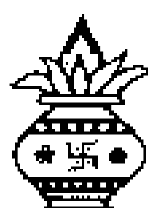
उभयभाषा कवि चक्रवर्ती श्री हस्तिमल्लविरचित

अञ्जना पवनंजयनाटकम्



पावन आशीर्वाद

पूज्य मुनि श्री १०८ सुधासागरजी महाराज

क्षुल्लक श्री १०५ गम्भीरसागरजी महाराज तथा

क्षुल्लक श्री १०५ धैर्यसागरजी महाराज

ISBN 81-87362 20-0

हिन्दी अनुवाद

डॉ. रमेशचन्द जैन, एम. ए., पी. एच. डी.

डी. लिट्, जैनदर्शनाचार्य

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

वर्द्धमान कॉलेज, बिजनौर, उ. प्र.

प्रकाशक

आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र,

ब्यावर

प्रकाशकीय

चिरंतन काल से भारत मानस समाज के लिये मूल्यवान विचारों की खान बना हुआ है। इस भूमि से प्रकट आत्मविद्या एवं तत्व ज्ञान में सम्पूर्ण विश्व का नव उदात्त दृष्टि प्रदान कर उसे पतनोमुखी होने से बचाया है । इस देश से एक के बाद एक प्राणवान प्रवाह प्रकट होते रहे । इस प्राणवान बहुमूल्य प्रवाहों की गति की अविरलता में जैनाचार्यों का महान योगदान रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी में पाश्चात्य विद्वानों द्वारा विश्व की आदिम सभ्यता और संस्कृति के जानने के उपक्रम में प्राचीन भारतीय साहित्य की व्यापक खोजबीन एवं गहन अध्यनादि कार्य सम्पादित किये गये। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक प्राच्यवाङ्मय की शोध, खोज व अध्ययन अनुशीलनादि में अनेक जैन-अजैन विद्वान भी अग्रणी हुए । फलत: इस शताब्दी के मध्य तक जैनाचार्य विरचित अनेक अंधकाराच्छादिक मूल्यवान ग्रन्थरत्न प्रकाश में आये इन महनीय ग्रन्थों में मानव जीवन की युगीन समस्याओं को सुलझाने का अपूर्व सामर्थ्य है । विद्वानों के शोध-अनुसंधान-अनुशीलन कार्यों को प्रकाश में लाने हेतु अनेक साहित्यक संस्थाए उदित भी हुई, संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती आदि भाषाओं में साहित्य सागर अवगाहनरत अनेक विद्वानों द्वारा नवसाहित्य भी सृजित हुआ है, किन्तु जैनाचार्य-विरचित विपुल साहित्य के सकल ग्रन्थों के प्रकाशनार्थ/अनुशीलनार्थ उक्त प्रयास पर्याप्त नहीं हैं । सकल जैन वाङ्मय के अधिकांश ग्रन्थ अब भी अप्रकाशित हैं, जो प्रकाशित भी है तो शोधार्थियों को बहुपरिश्रमोपरान्त भी प्राप्त नहीं हो पाते हैं । और भी अनेक बाधायें/समस्याएँ जैन ग्रन्थों के शोध-अनुसन्धान-प्रकाशन के मार्ग में हैं, अत: समस्याओं के समाधान के साथ-साथ विविध संस्थाओं-उपक्रमों के माध्यम से समेकित प्रयासों की आवश्यकता एक लम्बे समय से विद्वानों द्वारा महसूस की जा रही थी ।

राजस्थान प्रान्त के महाकवि ब्र. भूरामल शास्त्री (आ. ज्ञानसागर महाराज) की जन्मस्थली एवं कर्म स्थली रही है । महाकवि ने चार-चार संस्कृत महाकाव्यों के प्रणयन के साथ हिन्दी संस्कृत में जैन दर्शन सिद्धान्त एवं अध्यात्म के लगभग 24 ग्रन्थों की रचना करके अवरुद्ध जैन साहित्य-भागीरथी के प्रवाह को प्रवर्तित किया । यह एक विचित्र संयोग कहा जाना चाहिये कि रससिद्ध कवि की काव्यरस धारा का प्रवाह राजस्थान की मरुधरा से हुआ । इसी राजस्थान के भाग्य से श्रमण परम्परोन्नायक सन्तशिरोमणी आचार्य विद्यासागर जी महाराज के सुशिष्य जिनवाणी के यथार्थ उद्घोषक, अनेक ऐतिहासिक उपक्रमों के समर्थ सूत्रधार, अध्यात्मयोगी युवामनीषी पू. मुनिपुंगव सुधासागर जी महाराज का यहाँ पदार्पण हुआ । राजस्थान की धरा पर राजस्थान के अमर साहित्यकार के समग्रकृतित्व पर एक अखिल भारतीय विद्वत्/संगोष्ठी सांगानेर में दिनांक 9 जून से 11 जून, 1994 तथा अजमेर नगर में महाकवि महनीय कृति "वीरोदय" महाकाव्य पर अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी दिनांक 13 से 15 अक्टूबर 1994 तक आयोजित हुई व इसी सुअवसर पर दि. जैन समाज, अजमेर ने आचार्य ज्ञानसागर के सम्पूर्ण 24 ग्रन्थ मुनिश्री के 1994 के चार्तुमास के दौरान प्रकाशित कर/लोकार्पण कर अभूतपूर्व ऐतिहासिक काम करते श्रुत की महत् प्रभावना की । पू. मुनि श्री के सानिध्य में आयोजित इन संगोष्ठियों में महाकवि के कृतित्व पर अनुशीलनात्मक आलोचनात्मक, शोधपत्रों के वाचन सहित विद्वानों द्वारा जैन साहित्य के शोध क्षेत्र में आगत अनेक समस्याओं पर चिन्ता व्यक्त की गई तथा शोध छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करने, शोधार्थियों को शोध विषय सामग्री उपलब्ध कराने, ज्ञानसागर वाङ्मय सहित सकल जैन

विद्या पर प्रख्यात अधिकारी विद्वानों द्वारा निबन्ध लेखन - प्रकाशनादि के विद्वानों द्वारा प्रस्ताव आये। इसके अनन्तर मास 22 से 24 जनवरी तक 1995 में ब्यावर (राज.) में मुनिश्री के संघ सानिध्य में आयोजित "आचार्य ज्ञानसागर राष्ट्रीय संगोष्ठी" में पूर्व प्रस्तावों के क्रियान्वन की जोरदार मांग की गई तथा राजस्थान के अमर साहित्यकार, सिद्धसारस्वत महाकवि ब्र. भूरामल जी की स्टेच्यू स्थापना पर भी बल दिया गया, विद्वत् गोष्ठी में उक्त कार्यों के संयोजनार्थ डॉ. रमेशचन्द जैन बिजनौर और मुझे संयोजक चुना गया। मुनिश्री के आशीष से ब्यावर नगर के अनेक उदार दातारों के उक्त कार्यों हेतु मुक्त हृदय से सहयोग प्रदान करने के भाव व्यक्त किये।

पू. मुनिश्री के मंगल आशिष से दिनांक 18.3.95 को त्रैलोक्य तिलक महामण्डल विधान के शुभप्रसंग पर सेठ चम्पालाल रामस्वरूप की नसियाँ में जयोदय महाकाव्य (2 खण्डों में) के प्रकाशन सौजन्य प्रदाता आर. के. मार्बलस किशनगढ़ के रतनलाल कंवरीलाल पाटनी श्री अशोक कुमार जी एवं जिला प्रमुख श्रीमान् पुखराज पहाड़िया, पीसांगन के करकमलों द्वारा इस संस्था का श्रीगणेश आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र के नाम से किया गया।

आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ विमर्श केन्द्र के माध्यम से जैनाचार्य प्रणीत ग्रन्थों के साथ जैन संस्कृति के प्रतिपादक ग्रन्थों का प्रकाशन किया जावेगा एवं आचार्य ज्ञानसागर वाङ्मय का व्यापक मूल्यांकन-समीक्षा-अनुशीलनादि कार्य कराये जावेंगे। केन्द्र द्वारा जैन विद्या पर शोध करने वाले शोधार्थी छात्र हेतु 10 छात्रवृत्तियों की भी व्यवस्था की जा रही हैं।

केन्द्र का अर्थ प्रबन्ध समाज के उदार दातारों के सहयोग से किया जा रहा है। केन्द्र का कार्यालय सेठ चम्पालाल रामस्वरूप की नसियाँ में प्रारम्भ किया जा चुका है। सम्प्रति 10 विद्वानों को विविध विषयों पर शोध निबन्ध लिखने हेतु प्रस्ताव भेजे गये, प्रसन्नता का विषय है 25 विद्वान अपनी स्वीकृति प्रदान कर चुके हैं तथा केन्द्र स्थापना के प्रथम मास में ही निम्न पुस्तकें प्रकाशित की -

प्रथम पुष्प - इतिहास के पन्ने — आचार्य ज्ञानसागर जी द्वारा रचित

द्वितीय पुष्प - हित सम्पादक — आचार्य ज्ञानसागरजी द्वारा रचित

तृतीय पुष्प - तीर्थ प्रवर्तक — मुनिश्री सुधासागरजी महाराज के प्रवचनों का संकलन

चतुर्थ पुष्प - जैन राजनैतिक चिन्तन धारा डॉ. श्रीमती विजयलक्ष्मी जैन

पंचम पुष्प - अञ्जना पवनंजयनाटकम् संस्कृत भाषा में हस्तिमल द्वारा रचा गया है। जिसका हिन्दी अनुवाद डॉ. रमेशचन्द जैन-बिजनौर द्वारा किया गया है। यह अनुवाद आधुनिक हिन्दी सरल भाषा में किया गया हैं।

अस्तु।

अरुण कुमार शास्त्री,
ब्यावर

' श्री वीतरागाय नमः '

प्रस्तावना

दिगम्बर जैन ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर संस्कृत नाटकों की रचना करने वालों में रूपककार हस्तिमल्ल का प्रथम स्थान है । उन्होंने अनेक नाटकों की रचना की होगी, किन्तु वर्तमान में मैथिली कल्याण, विक्रान्त कौरव, अञ्जना पवनंजय और सुभद्रा (नाटिका) ये चार नाटक ही प्राप्त होते हैं । कुछ लोगों के अनुसार उन्होंने 'अर्जुनराज नाटक' नामक एक अन्य नाट्य ग्रन्थ की रचना की थी । भरतराज और मेघेश्वर नामक नाटक भी इनके द्वारा रचे गए कहे जाते हैं । तथापि इनके लेखक का नाम हस्तिमल्ल के स्थान पर हस्तिमल्लषेण छपा हुआ है । चूँकि हस्तिमल्लषेण नामक दूसरे नाटककार का पता अब तक नहीं चला है, इसलिए ये नाटक इन्हीं हस्तिमल्ल द्वारा लिखित होना चाहिए । विक्रान्त कौरव का दूसरा नाम नायक मेघेश्वर (जयकुमार) के कारण मेघेश्वर हो सकता है ।

हस्तिमल्ल कन्नड और संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान थे । कन्नड आदिपुराण की भूमिका में कवि ने अपने आपको 'उभयभाषाकवि चक्रवर्ती' कहा है[3] । हस्तिमल्ल द्वारा लिखित श्रीपुराण की अनेक प्रतियों का उल्लेख ताड़पत्रीय ग्रन्थसूची में है[4] ।

हस्तिमल्ल का समय - हस्तिमल्ल के समय की अवधि नौवीं शताब्दी ईस्वी से पूर्व की नहीं हो सकती; क्योंकि नौवीं शताब्दी में हुए आचार्य जिनसेन के आदिपुराण के आधार पर हस्तिमल्ल ने विक्रान्तकौरव नाटक और सुभद्रा नाटिका की रचना की थी ?

हस्तिमल्ल के समय की उत्तरावधि चौदहवीं शताब्दी मानी जा सकती है; क्योंकि अय्यपार्य के जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय में हस्तिमल्ल का उल्लेख है । जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय की रचना शक संवत् 1241 (वि. सं. 1376) में पूर्ण हुई थी ।

स्व. नाथूराम प्रेमी का कहना है कि श्री जुगलकिशोर मुख्तार ने ब्रह्मसूरि को 15वीं शती का विद्वान माना है, ब्रह्मसूरि हस्तिमल्ल के पौत्र के पौत्र थे । ब्रह्मसूरि हस्तिमल्ल के 100 वर्ष बाद हुए होंगे । अतः हस्तिमल्ल 14वीं शती में हुए हैं[5]

डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन ने हस्तिमल्ल का समय 1250 स्वीकार किया है[6]

हस्तिमल्ल द्वारा रचित अंजनापवनंजय नाटक की एक हस्तलिखित प्रति में नाटक की समाप्ति के पश्चात् प्रभेन्दुमुनि को नमस्कार किया गया है, इसी प्रकार समुद्र नाटिका की दो पाण्डुलिपियों की प्रशस्ति में प्रभेन्दु मुनि का उल्लेख वर्तमान काल की लट् लकार में

---

1. डॉ. कन्छेदीलाल जैन शास्त्री:रूपककार हस्तिमल : एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ. ३३
2. मेघेश्वरोऽपि विस्मारयति गुणान सोमप्रभस्य – विक्रान्त कौरव पृ. २४
3. इत्युभयभाषा चक्रवर्ती हस्तिमल्लविरचित पूर्वपुराण महाकथायां दशम पर्वम् ।
4. कन्नड प्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ सूची पृ. 148-149.
5. जैन साहित्य और इतिहास पृ. 265
6. The Jain sources of history of India page 228

है । सन् 1131 में विष्णुवर्द्धन राजा की पत्नी शान्तला ने समाधिमरण किया था, उस समय प्रभेन्दु या प्रभाचन्द्र उपस्थित थे । हस्तिमल्ल ने उन्हें योगिराट् कहा है । उस समय वे वृद्ध हो गए होंगे । इस प्रकार हस्तिमल्ल का जन्म लगभग 1160 ई. होना चाहिए ।

अय्यपार्य नामक विद्वान ने जो प्रतिष्ठा पाठ शक संवत् 1241 (ई. 1320) में लिखा था, उसमें उन्होंने आरम्भिक प्रशस्ति में पं. आशाधर और हस्तिमल्ल का उल्लेख किया है। इस प्रकार हस्तिमल्ल आशाधर के समकालीन माने जा सकते हैं । पं. आशाधर का अन्तिम ग्रन्थ अनगार धर्मामृत है, जो संवत् 1300 (1244 ई.) में समाप्त हुआ था ।

हस्तिमल का जन्म स्थान – ब्रह्मसूरि के प्रतिष्ठा सारोद्धार की प्रशस्ति से तीर्थहल्लि का परिचय दिया गया है । इसके आसपास हस्तिमल्ल का निवास होना चाहिए । यह स्थान हुम्मच हो सकता है । प्रशस्ति के में गुडिपत्तन द्वीप के नाम से इस स्थान का उल्लेख हुआ है । यहाँ वृषभेश्वर मन्दिर था । हुम्मच में वीर सान्तर या सान्तर वंशी राजाओं द्वारा 11वीं शती के अनेक मन्दिर हैं । उनमें जैन मठ के समीप का आदिनाथ (वृषभेश्वर) का मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है । सान्तर वंशी जिनदत्त के पुत्र तोलपुरुष विक्रम सान्तर ने हुम्मच में एक बसदि बनवायी थी, उसमें भगवान् बाहुबलि की मूर्ति प्रतिष्ठित करायी थी, उस वसदि का नाम गुड्ड (या गुडड) था ।

अंजनी पवनञ्जय नाटक की प्रशस्ति में लिखा गया है कि हस्तिमल्ल कर्नाटक की भूमि में संतरगम में रहते थे और वह सन्तरगम जैनागारों से युक्त था ।

वंश परम्परा

हस्तिमल्ल गोविन्द के पुत्र थे । गोविन्द का उल्लेख उन्होंने चारों नाटकों की प्रस्तावना में किया है । उनकी विद्वता का सूचक भट्टार, भट्टारक, भट्ट या स्वामी शब्द नाम के पूर्व जुड़ा हुआ है । गोविन्द प्रारम्भ में जैन नहीं थे । वे समन्तभद्राचार्य के देवागम स्तोत्र को सुनकर जैन हुए थे । गोविन्द वत्सगोत्रीय थे । विक्रान्त कौरव की प्रशस्ति के अनुसार वे 63 शलाका पुरुषों के चरित्र का वर्णन करने वाले उत्तरपुराण के रचियता गुणभद्र की परम्परा में उत्पन्न हुए थे । गुणभद्र आचार्य जिनसेन के शिष्य थे । जिनसेन के गुरु बहुश्रुत विद्वान् वीरसेन थे ।

वीरसेन आचार्य समन्तभद्र के दो प्रधान शिष्य शिवकोटि और शिवायन की आध्यात्मिक परम्परा में उत्पन्न हुए थे । इस प्रकार हस्तिमल्ल की गुरु परम्परा आचार्य समन्तभद्र तक जाती है। हस्तिमल्ल के पिता के सुदूर पूर्ववर्ती गुरु समन्तभद्र थे ।

हस्तिमल्ल अपने पिता के छह पुत्रों में एक थे । विक्रान्त कौरव की अन्तिम प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि वे सभी दाक्षिणात्य थे । सभी कवि और विद्वान थे । उनके नाम ये हैं – श्री कुमार कवि, सत्यवाक्य, देवरवल्लभ, उदयभूषण, हस्तिमल्ल और वर्द्धमान । अञ्जना पवनञ्जय तथा मैथिलीकल्याण की प्रस्तावना तथा चारों नाटकों के अन्त की पुष्पिका में हस्तिमल्ल के भाईयों के विषय में यही सूचना दी गयी है । मैथिली कल्याण नाटक की प्रस्तावना के अनुसार सत्यवाक्य ने श्रीमती और दूसरी कृतियाँ लिखी ।

शरण्यपुर पाण्ड्य राजा के द्वारा छोड़े हुए एक मतवाले हाथी को अपनी आध्यात्मिक शक्ति से वश में करने के कारण हस्तिमल्ल यह नाम पड़ा । विक्रान्त कौरव के प्रथम अङ्क

के चालीसवें पद्य में कहा गया है कि हाथी से मुठभेड़ में जीतने से पाण्ड्य राजा ने सौ श्लोकों में उनकी उपलब्धि का गुणगान कर गौरवान्वित किया। इस प्रकार लेखक की उपाधि हस्तिमल्ल थी। इस बात का पता नहीं चलता कि हाथी को पराजित करने से पूर्व उनका असली नाम क्या था ? अय्यपार्य ने हाथी सम्बन्धी घटना का उल्लेख जिनेन्द्र कल्याण चम्पू में किया है। नेमिचन्द्र या ब्रह्मसूरि के प्रतिष्ठातिलक के अनुसार हस्तिमल अपने विरोधी रूपी गजों को पराजित करने वाले सिंह थे। इससे यह बात सन्देहास्पद लगती है कि हस्तिमल्ल नाम पागल हाथी को वश में करने के कारण पड़ा था, अपितु इससे यह द्योतित होता है कि शास्त्रार्थों में सुप्रसिद्ध विरोधी विद्वानों को पराजित करने के कारण वे हस्तिमल्ल कहलाए।

अपने कुछ नाटकों की प्रस्तावना में हस्तिमल्ल ने अत्यधिक आत्मश्लाघा की है। वे अपने आपको सरस्वती का स्वयंवृत पति तथा कविश्रेष्ठ कहते हैं। मैथली कल्याण नाटक में उनके बड़े भाई सत्यवाक्य उन्हें कविता साम्राज्य लक्ष्मीपति कहते हैं। अञ्जना पवनञ्जय के अन्त में एक पद्य है, जहाँ लेखक को कविचक्रवर्ती कहा गया है। मैथली कल्याण नाटक की प्रशस्ति में उन्हें विजित धिषण बुद्धि सूक्ति रत्नाकर और दिक्षु प्रथित विमलकीर्ति कहा गया है। एक पद्य में उन्हें 'सूक्तिरत्नाकर' नाम को प्राप्त कहा गया है। अय्यपार्य हस्तिमल्ल को अशेषकविराज चक्रवर्ती कहते हैं। इन सब विशेषणों से स्पष्ट द्योतित होता है कि हस्तिमल्ल को उनके समकालीन और पश्चाद्वर्तियों द्वारा क्या प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

प्रतिष्ठा तिलक के रचयिता ब्रह्मसूरि (या नेमीचन्द्र) जो कि हस्तिमल्ल के वंश से सम्बन्धित है, के अनुसार हस्तिमल्ल के एक पुत्र था, जिसका नाम पार्श्व पण्डित था। श्रीमनोहरलाल शास्त्री का कहना है कि राजावली कथा के अनुसार हस्तिमल के अनेक पुत्र थे, जिनमें पार्श्वपण्डित सबसे बड़े थे। उनके एक शिष्य का नाम लोकचार्य था। किसी कारण पार्श्व पण्डित होयसल राज्य के अन्तर्गत छत्रत्रयपुरी में अपने सम्बन्धियों के साथ जाकर रहने लगे। उनके तीन पुत्र थे चन्द्रप, चन्द्रनाथ तथा वैजय्य। चन्द्रनाथ और उसका परिवार हेमाचल में रहा, जबकि अन्य भाई अन्यत्र चले गए। ब्रह्मसूरि चन्द्रप के पौत्र थे। चन्द्रप हस्तिमल्ल के पौत्र थे। हस्तिमल्ल गृहस्थ थे, वे मुनि नहीं हुए थे। नेमिचन्द्र के प्रतिष्ठातिलक में उन्हें गृहाश्रमी कहा है।

अञ्जनापवनंजय नाटक की कथावस्तु

इस नाटक में विद्याधर राजकुमारी अञ्जना का स्वयंवर तथा उसका विद्याधर राजकुमार पवनंजय के साथ विवाह वर्णित है। उन दोनों के हनुमान का जन्म होता है। प्रथम अङ्क- महेन्द्रपुर में अञ्जना के स्वयंवर की तैयारी हो रही है। विद्याधर राजा प्रह्लाद के पुत्र नायक पवनंजय ने एक बार नायिका अञ्जना को देखा था और वह उससे प्रेम करने लगा था। अञ्जना अपनी सखी वसन्तसेना और परिचारिका मधुकरिका तथा मालतिका के साथ प्रवेश करती है। उनकी बातचीत का विषय आगामी स्वयंवर और उसका परिणाम है। बालिकायें एक कृत्रिम स्वयंवर का अभिनय करती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि वसन्तमाला, जो कि अञ्जना का अभिनय कर रही है, पवञ्जय बनी हुई अञ्जना के गले में माला पहिना देती है। पवनञ्जय, जो कि अपने मित्र प्रहसित (विदूषक) के साथ इस दृश्य को छिपकर देख रहा था, अब आगे आ जाता है और अञ्जना का हाथ पकड़ लेता है, किन्तु अञ्जना की माँ उसे स्नान के लिए बुला लेती है और वह अपनी सखियों के साथ चली जाती है। पवनंजय और विदूषक भी भोजन करने चले जाते हैं।

द्वितीय अङ्क

स्वयंवर हो चुका है तथा अञ्जना पवनंजय को अपने पति के रूप में वरण कर लेती है। विवाह के बाद अञ्जना तथा उसकी सखी वसन्तमाला पवनंजय के पिता राजा प्रह्लाद की राजधानी आदित्यपुर में आती हैं, उनका यथोचित आदर होता है।

पवनंजय और अञ्जना प्रमदवन में बकुलोद्यान में भ्रमण करते हैं। उन दोनों में प्रेमालाप होता है। पवनंजय को अपने पिता प्रह्लाद के मन्त्री विजयशर्मन् से यह ज्ञात होता है कि राजा प्रह्लाद वरुण के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रयाण करने वाले हैं। वरुण, रावण दक्षिण समुद्र में स्थित लङ्का के राजा रावण का शत्रु है और पश्चिम समुद्र में ठहरा हुआ है। उसने रावण के दो सेनानायकों को बन्दी बना लिया है।

दोनों सेनानायकों को छुड़ाने के लिए रावण की प्रार्थना पर प्रह्लाद को जाना है। उनकी इच्छा है कि उनकी अनुपस्थिति में पवनंजय को राजधानी की रक्षा करना है, किन्तु अन्त में पवनंजय स्वयं को वरुण के विरुद्ध प्रयाण करने हेतु तैयार कर लेते हैं।

तृतीय अङ्क

वरुण और पवनञ्जय में चार माह से युद्ध हो रहा है। पवनंजय वरुण को शीघ्र और अचानक हराने के लिए धीरे धीरे युद्ध कर रहे हैं। उन्हें आशङ्का है कि रावण के दोनों सेनानायकों का जीवन खतरे में न पड़ जाय। पवनंजय दिन भर अपनी सेना का निरीक्षण करने के बाद कुमुद्वती तीर पर विश्राम कर रहे हैं।

चन्द्रमा पूर्व में उदित हो रहा है। पवनंजय एक चक्रवाकी को देखते हैं, जो कि चक्रवाक के वियोग में व्याकुल हो रही है। तत्काल उन्हें अञ्जना की याद आ जाती है। वह प्रेम के कारण बहुत व्याकुल हो जाते हैं। अन्त में वे शीघ्र ही विजयार्द्ध पर्वत पर जाकर अंजना से शीघ्र ही उसके महल में गुप्त रूप से मिलने का निश्चय कर लेते हैं। एक विमान में बैठकर वे आदित्यपुर पहुँचते है और वहाँ अंजना के महल में प्रविष्ट हो रात्रि उसके साथ बिताते हैं तथा दूसरे दिन प्रातःकाल युद्धभूमि में लौट आते हैं।

चतुर्थ अङ्क

वसन्तमाला के स्वागत कथन तथा केतुमती की परिचारिका युक्तिमती के साथ उसकी बातचीत से हमें ज्ञात होता है कि पवनंजय को अंजना से गुप्त रूप से मिले हुए चार माह बीत गए हैं। अंजना में गर्भ के लक्षण प्रकट होने लगे हैं। दोनों पवनंजय की माँ केतुमती की प्रतिक्रिया के विषय में चिन्तित हैं। वे आशा करती है और प्रार्थना करती है कि केतुमती अंजना के प्रति क्रूर और कठोर नहीं होगी। वसन्तमाला गर्भ का औचित्य सिद्ध करने के लिए युक्तिमती से पवनंजय के चार मास पूर्व आकर चले जाने की बात बता देती हैं। केतुमती पवनंजय के आने का विश्वास न करके अञ्जना को शराबी क्रूर भैरव के द्वारा निर्वासित करा देती है और उसके पिता राजा महेन्द्र के यहाँ भिजवा देती है, किन्तु अंजना को जो लाञ्छन लगाकर भेजा था, उसके कारण वह पिता के यहाँ न जाकर मार्ग में पुष्पखाट वीथि में उतर जाती है। क्रूर भैरव से कह देती है कि तुम कह देना कि हम महेन्द्रपुर में छोड़ आये है और हम वहाँ चले जायेंगे।

पंचम अङ्क

पवनंजय अन्त में वरुण को पराजित कर रावण के दोनों सेनानायक खर और दूषण को मुक्त करा देते हैं । वरुण के साथ मैत्री की सन्धि कर पवनंजय विद्याधरों के साथ विजयार्द्ध को लौट रहे हैं । पवनंजय और विदूषक विजयार्द्ध पर आकर अपने विमान से रजतशिखर पर उतरते हैं । पवनंजय को अपनी माँ मुक्तिमती, जो कि उनका स्वागत करने के लिए आयी थी, से पता चलता है कि अंजना गर्भवती है और अपने माता-पिता के साथ रहने के लिए महेन्द्रपुर गई है । पवनंजय अब सर्वप्रथम महेन्द्रपुर जाकर अंजना से मिलने का निश्चय करता है । कालमेघ नामक हाथी पर सवार होकर पवनंजय और विदूषक महेन्द्रपुर की ओर प्रस्थान करते हैं । रास्ते में वे सरोवणसरसी के किनारे ठहरते हैं । सरोवणसरसी नाभिगिनी पर स्थित है । पवनंजय को एक वनचर तथा उसकी पत्नी मिलती है । उनके वर्णन से वे निश्चय करते हैं कि अंजना और वसन्तमाला एक भयानक दिखाई देने वाले व्यक्ति के साथ महेन्द्रपुर की ओर गई हैं । यह व्यक्ति केतुमती के निर्देशानुसार उन्हें महेन्द्रपुर ले जाना चाहता था । अंजना ने अपने माता-पिता के यहां जाने से मना कर दिया तथा वन्य क्षेत्र में रहना पसन्द किया । वह और उसकी सखी मातङ्ग मालिनी वन में प्रविष्ट हो गई हैं । यह सुनकर पवनंजय मूर्छित हो जाता है। पुनः चेतना आने पर वह अपनी प्रिय पत्नी के लिए विलाप करता है । वह अत्यधिक तनावग्रस्त हो जाता है और उसी वन में प्रविष्ट होता है, जहाँ अंजना गयी है । वह विदूषक को विजयार्द्ध पर्वत से विद्याधरों को अंजना की खोज के लिए बुलाने हेतु भेजता है । वह अपने हाथी कालमेघ के साथ गहन वन में प्रविष्ट हो जाता है।

छठा अङ्क

गन्धर्वराज मणिचूड तथा उसकी पत्नी रत्नचूडा से ज्ञात होता है कि अंजना उनके संरक्षण में रह रही है तथा उसने एक पुत्र को जन्म दिया है । वह अपने पति के वियोग के कारण अत्यधिक दुःखी है ।

पवनंजय, जो कि अंजना के वियोग में पागल हो गया है, माङ्गमालिनी वन में घूम रहा है। वह चेतन और अचेतन सभी वस्तुओं से अंजना का समाचार देने की प्रार्थना करता है । किसी जानकारी के अभाव में अत्यधिक हताश होकर वह किसी चन्दन वृक्ष के नीचे बैठ जाता है । उसकी वाणी अवरुद्ध हो गयी है तथा आँखें आँसुओं से भीगी हुई हैं तथा मन अत्यधिक घबड़ाया हुआ और तनावग्रस्त है ।

प्रतिसूर्य, जिसे प्रहलाद ने पवनंजय की खोज में भेजा था, उसे मकरन्द वाटिका के किनारे की लताओं के बीच पाते हैं । वह गहरा ध्यान लगाए हुए था, उसके नेत्र मन्द थे तथा शरीर भावनाओं के कारण रोमाञ्चित हो रहा था । प्रतिसूर्य यह निश्चय कर लेता है कि स्थिति में केवल अंजना ही पवनंजय को प्रसन्न कर सकती है तथा उसकी चेतना वापिस आ सकती है । अतः वह घर वापिस आता है तथा अंजना और वसन्तमाला (जो कि उसके साथ रह रही थीं) को भेजता है । चन्दन लताओं के मध्य प्रविष्ट हुए पवनंजय को देखकर अंजना उसके समीप शीघ्रता से जाकर उसका आलिङ्गन कर लेती है । पवनंजय अंजना को देखकर अत्यधिक प्रसन्न होता है । प्रतिसूर्य जो कि मणिचूड को पवनंजय के मिलने का समाचार देने गया हुआ था, अब पवनंजय से मिलने आता है । पवनंजय अपनी प्रिय पत्नी के मामा से मिलकर अत्यधिक प्रसन्न होते हैं ।

सप्तम अङ्क

आदित्यपुर के राजभवन में यौवराज्याभिषेक की तैयारी हो रही है । पवनंजय, अंजना, विदूषक और वसन्तमाला सभा भवन में प्रविष्ट होते हैं । पवनंजय राजकीय सिंहासन पर रत्नमय छत्र के नीचे बैठा है । सभी उनके पुर्नमिलन पर बधाई देते हैं । प्रतिसूर्य छोटे बालक हनुमान के साथ आते हैं और पवनंजय को उसका परिचय देते हैं । प्रतिसूर्य मातङ्गमालिनी वन में जो घटित हुआ था, उसे सविस्तार बतलाते हैं । अंजना और वसन्तमाला को जो कठिनाईयाँ झेलनी पड़ी, किस प्रकार वे रत्नकूट के पूर्व में स्थित पयङ्क गुहा में पहुँची तथा वहाँ महान् मुनि अमितगति से मिली तथा उनके द्वारा उन्हें सान्त्वना दी गई कि उनकी मुशीबतें शीघ्र ही दूर होने वाली हैं, इत्यादि का वर्णन प्रतिसूर्य ने किया । वसन्तमाला और अंजना जब उस गुफा में ठहरी हुई थीं तो उन पर एक भयानक सिंह ने आक्रमण किया । उनकी चीख पुकार पर गन्धर्वराज मणिचूड तथा उसकी पत्नी रत्नचूडा ने उन्हें बचाया । अंजना ने उचित समय पर अपने पुत्र को जन्म दिया । प्रतिसूर्य ने उन्हें पहिचाना और वह उन्हें अनुरुहद्वीप ले गया, जहाँ नवजात शिशु का धार्मिक संस्कार किया गया । बाद में राजा प्रहलाद और महेन्द्र के अनुरोध पर प्रतिसूर्य मकरन्द द्वीप गए और मातङ्गमालिनी वन में पवनंजय को पाया । पुन: वे अनुरुह द्वीप जाकर अंजना तथा वसन्तमाला के साथ वापिस लौटे तथा अंजना और पवनंजय का मिलन हुआ इत्यादि घटनायें प्रतिसूर्य ने सुनाई । सभी ने मणिचूड गन्धर्व को भयानक सिंह से अंजना की रक्षा करने पर धन्यवाद दिया । मणिचूड ने वरुण और रावण के अनुरोध पर पवनंजय को विजयार्द्ध का सार्वभौम सम्राट घोषित किया । पवनंजय ने धन्यवाद पूर्वक नया दिया हुआ पद ग्रहण किया । विद्याधरों ने उन्हें प्रणाम किया । अन्त में भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है ।

अंजनापवनंजय नाटक का मूल स्रोत

हस्तिमल्ल ने अपने सभी नाटकों की विषयवस्तु जैन पुराणों से ग्रहण की है । अंजना पवनंजय की कथा विमलसूरि के पन्द्रहवें से 18वें उद्देश्य में तथा रविषेण के पद्मचरित के 15वें पूर्व से 18 वें पूर्व तक आयी है । दोनों में समानता है । दोनों कथाओं और हस्तिमल्ल की अंजना पवनंजय कथा में कुछ भिन्नता है । पउमचरिय तथा पउमचरित्र में पवनंजय के भिन्न भिन्न नाम हैं, जैसे - पवनगति, पवनवेग, वायुगति, वायुवेग, वायुकुमार इत्यादि। अंजना को अंजना सुन्दरी भी कहा है । राजा महेन्द्र की पत्नी का नाम पउमचरिय और पउमचरित में हृदयवेगा या हृदयसुन्दरी है, किन्तु हस्तिमल्ल के नाटक में इसका नाम मनोवेगा है । पउमचरित्र और पउमचरित में राजा महेन्द्र के अरिन्दम आदि 100 पुत्र कहे गए हैं, जबकि हस्तिमल्ल ने अरिंदम और प्रसन्नकीर्ति दो का उल्लेख किया है । पउमचरिय में पवनंजय की माँ केतुमती को कीर्तिमती कहा गया है । पदमचरिय और पद्मचरित में अंजना का स्वयंवर नहीं है । मन्त्रियों से सलाह के बाद राजा महेन्द्र अपनी पुत्री पवनंजय को देने का निश्चय करते हैं तथा उचित समय पर राजा प्रहलाद की स्वीकृति ले लेते हैं । विवाहोत्सव के तीन दिन पूर्व पवनंजय का मन अंजनासुन्दरी, वसन्तमाला और मिश्रकेशी के प्रति पक्षपात पूर्ण हो जाता है । वह पूरी परिस्थिति को गलत समझते हैं और किसी प्रकार निराधार निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अंजना सुन्दरी उनसे विवाह नहीं करना चाहती है; क्योंकि वह यथार्थ में विद्युत्प्रभ नामक दूसरे विद्याधर राजकुमार से प्रेम करती है । वे अंजना सुन्दरी को मारने के बिन्दु

तक पहुँच जाते हैं, किन्तु उनके मित्र प्रहसित उन्हें रोक लेते हैं । पवनंजय अंजना से घृणा करने लगते हैं तथा अंजना के साथ अपनी प्रस्तावित शादी को रद्द करना चाहते हैं तथा अपने नगर को वापिस आ जाते हैं ।

अपने पिता तथा राजा महेन्द्र के बार-बार अनुरोध पर वे अंजना सुन्दरी से विवाह करने का निश्चय करते हैं, किन्तु विवाह के बाद अंजनासुन्दरी को मार देने का वे मन ही मन निश्चय कर लेते हैं । अंजनासुन्दरी के प्रति घृणा के कारण वे उससे 22 वर्ष विमुख रहते हैं । अंजना दुःख सहन करती रहती है । यहाँ तक कि जब वे वरुण के प्रति युद्ध के लिए प्रस्थान करने लगते हैं, तब अंजना उन्हें विदा करने आती है, किन्तु वे उसे फटकार कर उसका तिरस्कार करते हैं ।

पवनंजय का अंजना के प्रति यह दृष्टिकोण मानसरोवर पर चकवे के वियोग में दुःखी चकवी को देखकर परिवर्तित होता है, वे उसे अत्यधिक चाहने लगते हैं तथा उसके प्रति किए गए अपने कठोर व्यवहार पर पछतावा करते हैं । वे गुप्त रूप से अपने नगर जाते हैं तथा अपनी पत्नी से मिलकर उसके साथ कई दिन बिताते हैं । पउमचरिय के अनुसार अंजना के साथ केवल एक रात बिताते हैं । वे अपने माता-पिता को अपने आगमन के विषय में बतलाना उचित नहीं समझते हैं । उनके माता-पिता को भी उनके आगमन की कोई जानकारी नहीं होती है । युद्ध क्षेत्र में लौटने से पूर्व पवनंजय को अंजना के गर्भ की जानकारी मिल जाती है । वह निश्चित रूप से कहते हैं कि गर्भ के लक्षण प्रकट होने से पूर्व ही वे युद्ध क्षेत्र से वापिस आ जायेंगे । वे अंजना को अपने नाम से अंकित एक हार देते हैं, ताकि आवश्यकता पड़ने पर वह उसका उपयोग कर सके । पवनंजय की माँ को जब अंजना के गर्भ के विषय में मालूम होता है, तो उसका गहरा धक्का सा लगता है । उसे यह पता था कि पवनंजय अंजनासुन्दरी से कितनी घृणा करता है तथा वह इस बात पर विश्वास नहीं करती है कि पवनंजय गुप्त रूप से अंजना से मिलने आया था । इस कारण वह अंजना को उसके माता-पिता के यहाँ भेज देती है । राजा महेन्द्र अपनी पुत्री को जिसका चरित्र सन्दिग्ध है, अपने घर प्रवेश नहीं देते हैं । वे उसे अपने महल से बाहर निकाल देते हैं ।

मुनि अमितगति, जिनके पर्यङ्कगुफा में अंजनासुन्दरी को दर्शन हुए थे, ने गर्भस्थ शिशु के पूर्वजन्म का हाल बतलाया तथा वह कारण भी बतलाया, जिसके कारण पवनंजय अंजना से घृणा करते थे तथा जिसके कारण अंजना का उनसे वियोग हुआ ।

अंजना प्रतिसूर्य के विमान में बैठी हुई थी । उसके मुस्कराते हुए बालक ने छलाँग लगाई तथा वह नीचे स्थित पर्वत की चट्टानों के मध्य गिर गया । चट्टान के टुकड़े-टुकड़े हो गए, किन्तु बालक को कोई चोट नहीं पहुँची । इस कारण बालक का नाम श्रीशैल रखा गया । इसका दूसरा नाम हनुमत् भी रखा; क्योंकि इसे बचपन में प्रतिसूर्य के हनुरुह द्वीप में लाया गया था ।

वरुण के साथ युद्ध की परिसमाप्ति होने पर पवनंजय घर वापिस लौटते हैं, जब उन्हें ज्ञात होता है कि उनकी पत्नी को उसके माता-पिता के घर भेज दिया गया है तो वे राजा महेन्द्र के पास जाते हैं, किन्तु उन्हें यह जानकर बड़ा दुःख होता है कि वह वहाँ नहीं है? वे अंजना की खोज में भूतरवाटवी में पहुँचते हैं । वे अपने माता-पिता को अपना निर्णय बतला देते हैं कि जब तक अंजना नहीं मिलती है, तब तक वे घर वापिस नहीं आयेंगे ।

केतुमती को अपनी भूल मालूम पड़ती है । विद्याधर पवनंजय को मुनि के समान ध्यानमग्न और मौन पाते हैं । पवनंजय इशारे से अपने माता-पिता को बतला देते हैं कि जब तक वे अंजना को नहीं देख लेते हैं, तब तक आमरण उनका मौन और अनशन है ।

उपर्युक्त मोड़ के अतिरिक्त हस्तिमल्ल ने पउमचरिय की कथा का श्रद्धापूर्वक अनुसरण किया है ।

छन्द

हस्तिमल्ल ने अंजना पवनंजय नाटक में छन्दों का प्रचुर प्रयोग किया । यहाँ कुल पद्य 188 हैं, जो निम्नलिखित छन्द में हैं - आर्या (37), शार्दूलविक्रीडित (30), अनुष्टुप् (20), उपजाति (17), शिखरिणी (16), मालिनी (12), वसन्ततिलका (9), स्रग्धरा (6), वंशस्थ (5), मंदाक्रान्ता (5, वियोगिनी (5), हरिणी (3), औपच्छन्दसिक (3), इन्द्रवज्रा (2), पुष्पिताग्रा (2), पृथ्वी (2), शालिनी (2), द्रुतविलम्बित (2), उपेन्द्रवज्रा, प्रहर्षिणी, रथोद्धता, प्रमिताक्षरा, मंजुभाषिणी, चारु, अपवलम्बक, तोटक तथा वैतालीय छन्द एक एक है । छन्दों का प्रयोग रसानुकूल किया गया है ।

प्राकृत का प्रयोग

अञ्जना - पवनंजय यद्यपि संस्कृत नाटक है, किन्तु संस्कृत नाटकों की परम्परानुसार इसमें प्राकृत का भी प्रयोग किया गया है । विदूषक, अंजना, वसन्तमाला एवं यूक्तिमती शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग करते हैं । वनेचर, चेट, क्रूर, लवलिका ये मागधी का प्रयोग करते हैं । चमूरक वनेचर के कथन में ढक्की का प्रयोग हुआ है ।

आभार प्रदर्शन

वीर निर्वाण संवत् 2476 (विक्रमाब्द 2006) में माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बम्बई से हस्तिमल्ल के दो नाटकों (अञ्जना पवनंजय तथा सुभद्रा नाटिका) का प्रकाशन श्री माधव वासुदेव पटवर्द्धन के संशोधन के साथ हुआ था । इसके प्रारम्भ में 61 पृष्ठ की विद्वत्तापूर्ण अंग्रेजी प्रस्तावना दी हुई है । इसके अतिरिक्त प्राकृत जैन शास्त्र एवं अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली (बिहार) की ओर से मार्च 1980 में डॉ. कन्छेदीलाल जैन शास्त्री का रूपककार हस्तिमल्ल - एक समीक्षात्मक अध्ययन ग्रन्थ प्रकाशित हुआ था । हस्तिमल्ल के विषय में समग्र जानकारी उपलब्ध कराने वाला यह एक मात्र प्रकाशित शोध प्रबन्ध है, जो कि श्रद्धेय डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री जैसे प्रख्यात् मनीषी के निर्देशन में लिखा गया है और इसके लेखन में लेखक ने पर्याप्त श्रम किया है । यह प्रस्तावना प्रो. पटवर्द्धन एवं डॉ. कन्छेदीलाल जैन के उपर्युक्त ग्रन्थों के आधार पर लिखी गयी है, इसमें मेरा अपना कुछ नहीं है । इन दोनों विद्वानों के प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ ।

वर्ष 1994 के अक्टूबर मास की 13, 14 एवं 15 तारीख को अजमेर में सोनी जी की नसिया में पूज्य 108 आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा विरचित वीरोदय महाकाव्य पर एक विद्वत् संगोष्ठी आयोजित की गयी, इसमें देश के कोने-कोने से आए हुए लगभग 50 विद्वानों ने भाग लिया । संगोष्ठी पूज्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के शिष्य पूज्य श्री 108 सुधासागरजी एवं क्षुल्लक द्वय श्री 105 गम्भीरसागरजी महाराज एवं धैर्यसागरजी

महाराज के चरण सान्निध्य में सम्पन्न हुई, जिसमें देश के जैनाजैन मूर्द्धन्य विद्वानों ने वीरोदय के विभिन्न पहलुओं पर अपने आलेखों का वाचन किया और प्रत्येक विषय पर विद्वानों में पर्याप्त ऊहापोह हुआ। इसी सुअवसर पर श्री सेठी, भैंसा व पाटनी परिवार के आर्थिक सहयोग से यह अंजना पवनंजय नाटक प्रकाशित किया जा रहा है। अर्थप्रदाता को मेरी ओर से हार्दिक धन्यवाद।

पूज्य मुनि श्री 108 सुधासागरजी महाराज एवं क्षुल्लक द्वय के चरणों में मेरा कोटि-कोटि नमन

हरत्यघं सम्प्रतिहेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः
शरीरभाजां भवदीय दर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम्
(महाकवि माघ)

धर्मानुरागी
रमेशचन्द जैन



नाट्यकार हस्तिमल्ल का परिचय

दिगम्बर-जैन-साहित्य में हस्तिमल्ल का एक विशेष स्थान है। क्योंकि जहाँ तक हम जानते हैं रूपक या नाटक उनके सिवाय और किसी दि. जैन कवि के नहीं मिले हैं। श्रव्य काव्य तो बहुत लिखे गये परन्तु दृश्य काव्य की ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया। हस्तिमल्ल ने साहित्य के इस अंग को खूब पुष्ट किया। उनके लिखे हुए अनेक सुन्दर नाटक उपलब्ध हैं।

वंश-परिचय

हस्तिमल्ल के पिता का नाम गोविन्दभट्ट था। वे वत्सगोत्री ब्राह्मण थे और दाक्षिणात्य थे। स्वामी समन्तभद्र के देवागम-स्तोत्र को सुनकर उन्होंने मिथ्यात्व छोड़ दिया था और सम्यग्दृष्टि हो गये थे। उन्हें स्वर्ण यक्षी नामक देवी के प्रसाद से छह पुत्र उत्पन्न हुए। श्री कुमारकवि, 2 सत्यवाक्य, 3 देवरवल्लभ, 4 उदयभूषण, 5 हस्तिमल्ल और 6 वर्धमान। अर्थात् वे अपने पिता के पाँचवें पुत्र थे। ये छहों के छहों पुत्र कवीश्वर थे इस तरह गोविन्दभट्ट का कुटुम्ब अतिशय सुशिक्षित और गुणी था।

सरस्वतीस्वयंवरवल्लभ, महाकवितल्लज और सूक्ति-रत्नाकर उनके बिरुद थे। उनके बड़े भाई सत्यवाक्य ने उन्हें 'कवितासाम्राज्यलक्ष्मीपति' कहकर उनकी सूक्तियों की बहुत ही प्रशंसा की है। राजावली-कथा के कर्ता ने उन्हें उभय-भाषाकवि-चक्रवर्ती लिखा है।

हस्तिमल्ल ने विक्रान्त कौरव के अन्त में जो प्रशस्ति दी है, उसमें उन्होंने समन्तभद्र, शिवकोटि, शिवायन, वीरसेन, जिनसेन और गुणभद्र का उल्लेख करके कहा है कि उनकी शिष्य-परम्परा में असंख्य विद्वान् हुए और फिर गोविन्दभट्ट हुए जो देवागम को सुनकर सम्यग्दृष्टि हुए। पर इसका यह अर्थ नहीं कि वे उक्त मुनि परम्परा के कोई साधु या मुनि थे। जैसी कि जैन ग्रन्थ कर्ताओं की साधारण पद्धति है, उन्होंने गुरु परम्परा का उल्लेख करके अपने पिता का परिचय दिया है।

हस्तिमल्ल स्वयं भी गृहस्थ थे। उनके पुत्र-पौत्रादि का वर्णन ब्रह्मसूरि ने प्रतिष्ठा सारोद्धार में किया है। स्वयं ब्रह्मसूरि भी उनके वंश में हुए हैं। वे लिखते हैं कि पाण्ड्य देश में गुडिपतन के शासक पाण्ड्य नरेन्द्र थे, जो बड़े ही धर्मात्मा, वीर, कलाकुशल और पण्डितों का सम्मान करने वाले थे। वहाँ वृषभतीर्थंकर का रत्नसुवर्णजटित सुन्दर मन्दिर था, जिसमें विशाखनन्दि आदि विद्वान् मुनिगण रहते थे। गोविन्द भट्ट यहीं के रहने वाले थे। उनके श्रीकुमार आदि छह लड़के थे। हस्तिमल्ल के पुत्र का नाम पार्श्वपंडित था जो अपने पिता के ही समान यशस्वी धर्मात्मा और शास्त्रज्ञ थे। ये अपने वशिष्ठ काश्यपादि गोत्रज बान्धवों के साथ होय्सल देश में जाकर रहने लगे, जिसकी राजधानी छत्रत्रयपुरी थी। पार्श्वपंडित के चन्द्रप, चन्द्रनाथ और वैजय्य नामक तीन पुत्र थे। इनमें चन्द्रनाथ अपने परिवार के साथ हेमाचल (होसूर) में अपने परिवार सहित जा बसे और दो भाई अन्य स्थानों को चले गये। चन्द्रप के पुत्र विजयेन्द्र हुए और विजयेन्द्र के ब्रह्मसूरि, जिनके बनाये हुए त्रिवर्णाचार और प्रतिष्ठा-तिलक ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

कवि के भाई

कवि के जो पांच भाई थे, उनसे हम प्रायः अपरिचित हैं । सत्यवाक्य को हस्तिमल्ल ने 'श्रीमती-कल्याण' आदि कृतियों का कर्ता बतलाया है, परन्तु उनका न तो यह ग्रन्थ ही अभी तक प्राप्त हुआ है और अन्य कोई ग्रन्थ ही । नाम से ऐसा मालूम होता है कि 'श्रीमती-कल्याण' भी बहुत करके नाटक होगा ।

श्रीकुमार कवि का 'आत्मप्रबोध' नाम का एक ग्रंथ प्रकाशित हो चुका है, परन्तु वे हस्तिमल्ल के बड़े भाई हैं या कोई और, इसका निर्णय नहीं हो सका ।

वर्धमान कवि को कुछ लोगों ने गणरत्नमहोदधि का ही कर्त्ता समझ लिया है किन्तु यह भ्रम है । गणरत्न के कर्त्ता श्वेतांबर सम्प्रदाय के हैं और उन्होंने सिद्धराज जयसिंह (वि. सं. 1151-1200) की प्रशंसा में कोई काव्य बनाया था । दिगम्बर सम्प्रदाय पर उन्होंने कटाक्ष भी किये हैं, और वे हस्तिमल्ल से बहुत पहले हुए हैं ।

कवि का नाम

हस्तिमल्ल का असली नाम क्या था, इसका पता नहीं चलता । यह नाम तो उन्हें एक मत हाथी को वश में करने के उपलक्ष्य में पाण्ड्य राजा के द्वारा प्राप्त हुआ था । उस समय उन का राजसभा में सैकड़ों प्रशंसा-वाक्यों से सत्कार किया गया था । इस हस्ति-युद्ध का उल्लेख कवि ने अपने सुभद्राहरण नाटक में भी किया है । और साथ ही यह भी बतलाया है कि कोई धूर्त जैनमुनि का रूप धारण करके आया था और उसको भी हस्तिमल्ल ने परास्त कर दिया था ।

पाण्ड्यमहीश्वर

हस्तिमल्ल ने पाण्ड्य राजा का अनेक जगह उल्लेख किया है । वे उनके कृपापात्र थे और उनकी राजधानी में अपने विद्वान् आप्तजनों के साथ जा बसे थे ।

राजा ने अपनी सभा में उन्हें खूब ही सम्मानित किया था । ये पाण्ड्यमहीश्वर अपने भुजबल से कर्नाटक प्रदेशपर शासन करते थे ।

कवि ने इन पाण्ड्य महीश्वर का कोई नाम नहीं दिया है । सिर्फ इतना ही मालूम होता है कि वे थे तो पाण्ड्य देश के राजवंश के, परन्तु कर्नाटक आकर राज्य करने लगे थे ।

दक्षिणकर्नाटक के कार्कल स्थान पर उन दिनों पाण्ड्यवंश का ही शासन था । यह राजवंश जैनधर्म का अनुयायी था और इसमें अनेक विद्वान् तथा कलाकुशल राजा हुए हैं। 'भव्यानन्द' नामक सुभाषित ग्रन्थ के कर्त्ता भी अपने को 'पाण्ड्यक्ष्मापति' लिखते हैं, कोई विशेष नाम नहीं देते । हमारी समझ में ये हस्तिमल्ल के आश्रयदाता राजा के ही वंश के अनन्तरवर्ती कोई जैन राजा थे और इन्होंने ही शायद श. सं. 1353 (वि. सं. 1488) में कार्कल की विशाल बाहुबलि प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कराई थी ।

पाण्ड्यमहीश्वर की राजधानी मालूम नहीं कहां थी । अञ्जना पवनंजय के 'श्रीमत्पाण्ड्यमहीश्वरेण' आदि पद्य से तो ऐसा मामूल होता है कि संतरनम या संततगाम नामक स्थान में हस्तिमल्ल अपने कुटुम्बसहित जा बसे थे, इसलिए यह उनकी राजधानी होगी, यद्यपि यह पता नहीं कि यह स्थान कहाँ पर था ।

हाथी का मद उतारने की घटना 'सरण्यापुर' नामक स्थान में घटित हुई थी और वहाँ की राजसभा में ही उन्हें सत्कृत किया गया था। इस स्थान का भी कोई पता नहीं है। या तो यह संततगम का ही दूसरा नाम होगा या फिर किसी कारण से पाण्डय राजा हस्तिमल के साथ कहीं गये होंगे और वहाँ यह घटना घटी होगी।

कवि का मूलनिवासस्थान

ब्रह्मसूरि ने गोविन्दभट्ट का निवासस्थान गुडिपत्तन बतलाया है और पं. के. भुजबलि शास्त्री के अनुसार यह स्थान तंजौर का दीपंगुडि नाम का स्थान है, जो पाण्ड्य देश में है। कर्नाटक का राज्य प्राप्त होने पर या तो वे स्वयं ही या उनका कोई वंशज कर्नाटक में आकर रहने लगा होगा और उसी की प्रीति से हस्तिमल्ल कर्नाटक की राजधानी में आ बसे होंगे।

ब्रह्मसूरि के बतलाये हुए गुडिपत्तन का ही उल्लेख हस्तिमल्ल ने विक्रान्त कौरव की प्रशस्ति में द्वीपंगुडि नाम से किया है। उसमें भी वहाँ के वृषभजिन के मन्दिर का उल्लेख है जिनके पादपीठ या सिंहासनपर पाण्ड्यराजा के मुकुट की प्रभा पड़ती थी। वृषभजिन के उक्त मन्दिर को 'कुश-लवरचित' अर्थात् रामचन्द्र के पुत्र कुश और लव के द्वारा निर्मित बतलाया है।

हस्तिमल्ल का समय

अय्यपार्य नामक विद्वान ने अपने जिनेन्द्र कल्याणभ्युदय नामक प्रतिष्ठापाठ में लिखा है कि मैंने यह ग्रन्थ वसुनन्दि, इन्द्रनन्दि, आशाधर और हस्तिमल्ल आदि की रचनाओं का सार लेकर लिखा है और उक्त ग्रन्थ श. सं. 1241 (वि. सं. 1316) में समाप्त हुआ था। अतएव हस्तिमल्ल 1316 से पहले हो चुके थे।

ब्रह्मसूरि ने अपनी जो वंशपरम्परा दी है, उसके अनुसार हस्तिमल्ल उनके पितामह के पितामह थे। यदि एक-एक पीढ़ी के पच्चीस पच्चीस वर्ष गिन लिये जाँय, तो हस्तिमल्ल उनसे लगभग सौ वर्ष पहले के हैं और पं. जुगलकिशोरजी मुख्तार ब्रह्मसूरि को विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दि का विद्वान् मानते हैं, अतएव हस्तिमल्ल को विक्रमकी चौदहवीं शताब्दि का विद्वान् मानना चाहिए।

कर्नाटक कविचरित्र के कर्त्ता आर. नरसिंहाचार्य ने हस्तिमल्ल का समय ई. सन् 1290 अर्थात् वि. सं. 1348 निश्चित किया है, और यह ठीक मालूम होता है।

ग्रन्थ-रचना

हस्तिमल्ल के अभीतक चार नाटक प्राप्त हुए हैं 1 विक्रान्तकौरव, 2 मैथिलीकल्याण, 3 अञ्जनापवनंजय 4 सुभद्रा। इनमें से पहले दो प्रकाशित हो चुके हैं।

इनके सिवाय 1 उदयनराज, 2 भरतराज, 3 अर्जुनराज, और 4 मेघेश्वर इन चार नाटकों का उल्लेख और मिलता है। इनमें से भरतराज सुभद्रा का ही दूसरा नाम मालुम होता है। शेष तीन नाटक दक्षिण के भंडारों में खोज करने से मिल सकेंगे। 'प्रतिष्ठा-तिलक' नाम का एक और ग्रन्थ आरा के जैन सिद्धान्त-भवन में है। यद्यपि इस ग्रन्थ में कहीं हस्तिमल्ल का नाम नहीं दिया है परन्तु अय्यपार्य ने अपने जिनेन्द्र कल्याणाभ्युदय में जिन जिनके प्रतिष्ठापाठों

का सार लेकर अपने ग्रन्थ रचने का उल्लेख किया है। उनमें हस्तिमल्ल भी हैं। अतएव निश्चय से हस्तिमल्ल एक प्रतिष्ठापाठ है और वह यही है।

आदिपुराण (पुरुचरित) और श्रीपुराण नाम के दो ग्रन्थ कनड़ी भाषा में भी हस्तिमल्ल के बनाये हुए उपलब्ध हैं। संस्कृत के समान कनड़ीभाषा पर भी उनका अधिकार था और शायद इसी कारण वे उभयभाषाचक्रवर्ती कहलाते थे। यदि उनका जन्मस्थान दीपंगुडि है, जैसा कि ब्रह्मसूरि ने लिखा है तो उनकी मातृभाषा तामिल होगी और ऐसी दशा में कनड़ीपर भी उन्होंने संस्कृत के समान प्रयत्नपूर्वक अधिकार प्राप्त किया होगा।

❑ ❑ ❑

अञ्जनापवनंजयं नाम नाटकम्

चराचर गुरु, जिसके सामने आदि में सङ्गीत का आरम्भ किए हुए इन्द्र ने क्रम से नाट्यरसों का अभिनय करते हुए ताण्डव नृत्य किया । जिस वाणी के ईश्वर से अचिन्त्य महिमा वाली भारती प्रकट हुई । पुराण कवि श्रीमान् वह मुनिसुव्रत आपको कल्याण प्रदान करें (1)

(नान्दी पाठ के अन्त में)

सूत्रधार - अतिप्रसङ्ग से बस करो । मारिष, जरा इधर आओ ।

(प्रवेश करके)

पारिपार्श्विक - महानुभाव, यह मैं हूं ।

सूत्रधार - मुझे परिषद् ने आज्ञा दी है कि आज तुम सरस्वती के द्वारा स्वयं पति के रूप में वरण किए गए भट्टारक गोविन्दस्वामी के पुत्र आर्य श्री कुमार, सत्यवाक्य, देवरवल्लभउदय भूषण आर्यमिश्र के अनुज कवि वर्द्धमान के अग्रज कवि हस्तिमल्ल के द्वारा रचे गए विद्याधरचरित का जिसमें निबन्धन किया गया है, ऐसे अंजनापवनजंय नामक नाटक का यथावत् प्रयोग करना है ।

पारिपार्श्विक - महानुभाव, परिषद् का इस नाटक के विषय में बहुमान क्यों है ?

सूत्रधार - निश्चित रूप से कवि परिश्रम ही यहाँ कारण है क्योंकि समीचीन वाणी हो, अत्यधिक सरल कोई अपूर्व रचना हो, बन्धन की युक्ति उत्कृष्ट हो, परिषद् की आराधना करने वाला कवि हो, बिना चबाया हुआ, गाढ़ तथा जो परम गूढ़ न हो, ऐसा रस हो, इस प्रकार कवियों की सामग्री शीघ्र ही किसको चलित नहीं करती है ? अर्थात् सभी को करती है ॥2॥

पारिपार्श्विक - बात यही है । कवियों का अन्तिम छोर नाटक होता है, यह बात सत्य है।

सूत्रधार - तो इस समय संगीत का आरम्भ किया जाय ।

पारिपार्श्वक - तो विलम्ब क्यों किया जा रहा है । ये महेन्द्र के पुत्र अरिंदम अपनी छोटी बहिन अंजना के चारों ओर से स्वयंवर महोत्सव के लिए नगर के समीप में आए हुए राजा लोगों की समुचित सत्कार के साथ अगवानी करने के लिए महाराज महेन्द्र के द्वारा नियुक्त होकर नगर की सजावट के लिए नागरिकों को प्रोत्साहित करते हुए इधर ही आ रहे हैं । इस महोत्सव में हम लोगों को भी वेषभूषा वगैरह ग्रहण करने का उचित ही अवसर है । हम लोग कैसे सजाए हुए स्वयंवर मण्डप में पहुँचकर कुशल नटों के साथ सङ्गीत आरम्भ करें ।

पारिपार्श्वक - महानुभाव जैसी आज्ञा दें ।

(इस प्रकार दोनों चले जाते हैं)

प्रस्तावना

(अनन्तर अरिंदम प्रवेश करते हैं)

अरिंदम - पिताजी ने मुझे आज्ञा दी है कि वत्स अरिंदम पुत्री अंजना के स्वयंवर महोत्सव के लिए बुलाए गए पवनंजय, विद्युत्प्रभ मेघनाथ प्रमुख राजपुत्र इस समय हमारे नगर में प्रवेश कर रहे है । तो इस समय नगरी के प्रसाधन के लिए तथा राजाओं की अगवानी करने के लिए तुम्हें ही सावधान होना चाहिए। (चारों ओर देखकर) यह हमारे आदेश नगरी विशेष रूप से निर्मल बना दी गई है । जैसे कि अत्यधिक उत्सुक नगर निवासियों ने इन समस्त घरों के ऊपर ध्वजायें फहरा दी हैं। इस समय मणिनिर्मित फर्शों के चारों ओर द्वारों पर वन्दनमालिकायें लगा दी है ॥3॥

(परिक्रमा देकर और देखकर)

ओह, कैसे इस समय यहाँ नगर के बीच की चौड़ी सड़क को पारकर समस्त दिशाओं से आए हुए अपनी सेना के समूह की भीड़ के कोलाहल से दशों दिशाओं को रोके हुए दिक्पालों के समान राजा लोग गली में ही प्रवेश कर रहे हैं । (देखकर) यह कौन राजमार्ग का उल्लंघन कर प्रमदवन के सम्मुख अन्तःपुर की रखवाली करने वाले सेवकों के द्वारा भीड़ हटा दी जाने पर श्रेष्ठ घोड़े से उतरा है । (देखकर) ओह, तात के परम् मित्र प्रह्लादराज का यह पुत्र है ।

परिमित [illegible] वाला, नगर निवासियों के द्वारा मुझे [illegible] के समान आदरपूर्वक देखा गया, इस समय प्रमदवन में पैदल क्रीड़ा करता हुआ सुन्दर कान्ति रूपी लक्ष्मी को धारण करता हुआ प्रवेश कर रहा है ॥4॥

(सोचकर) पहले यहाँ मिलते हुए स्वागत संकथा से, कुशल प्रश्न पूर्वक सुखपूर्वक वार्तालाप करते हुए औपचारिकता से मेरा बहुत समय बीत जाएगा। अतः इस समय समीपवर्ती शेष कार्य की परिसमाप्ति पर पुनः इसे देखूँगा। (इस प्रकार चला जाता है)

शुद्ध विष्कम्भः

(अनन्तर पवनंजय और विदूषक प्रवेश करते हैं)

पवनंजय - मित्र , यह उद्यान रमणीय है । अतः यहीं पर मुहूर्त भर के लिए विश्राम कर पश्चात् आवासस्थल की ओर चलते हैं ।

विदूषक - ऐसा ही हो । यहाँ पर महाराज प्रह्लाद और महेन्द्रराज की चिरकाल से वृद्धि को प्राप्त मैत्री से आत्मीय होने पर भी हम दोनों प्रमदवन के प्रदेशों में विश्वासपूर्वक विहार करें । अतः प्रिय मित्र इधर आईए, इधर आइए । (घूमते हैं)

पवनंजय - (देखकर) अरे प्रमदवन की उत्कृष्ट शोभा आश्चर्यजनक है ।

यहाँ पर - भौंरों की झंकार रूप प्रत्यंचा का शब्द हो रहा है । तीक्ष्ण धारों वाले ये कामदेव के बाण भी गिर रहे हैं । यह सखा बसन्त स्वयं बगल में स्थित है । यह पुष्परूप बाणों को झुकाए हुए कामदेव सदा जोश में भरा हुआ घूम रहा है ॥5॥

विदूषक – हे मित्र, इधर से गिरते हुए किञ्जल्क के फूलों के समूह से जिसके पंखों का समूह पीला-पीला हो रहा है वेशभूषा को ग्रहण किए हुए सी कोयल आम के शिखर पर चढ़कर गा रही है, जरा देखो। इधर स्पष्ट रूप से अलग की हुई कली रूपी सैकड़ों प्यालों में भरे हुए शहद के रस का पान करने से मद के समूह से युक्त राजकीय तोता बकुलवीथी में सहचरी के साथ विहार कर रहा है। इधर प्रत्येक नए विकसित फूलों के आसव के लोभ से घूमते हुए भौंरों की झंकार से सुन्दर नवमालिका लुब्ध कर रही है। इधर हरी-हरी पत्रलता से दिन में रात्रि की आशंका से चकवे के समूहों के द्वारा आस-पास की भूमि छोड़ी जा रही है। नए-नए मेघों के उद्‌गम से लुब्ध हुए भोले-भाले पपीहों के बच्चों के द्वारा बहते हुए मधु की बूँदें पी जा रही है। आवाज से मुखर मोरों के समूह से भी इधर-उधर जहाँ ताण्डव रूप उपहार दिया जा रहा है, ऐसा यह नवीन तमाल सुशोभित हो रहा है।

पवनंजय – हे मित्र, ठीक देखा। देखो चंचल किसलय रूपी हाथ के अग्रभाग के द्वारा उठायी हुई फूलों की माला को छोड़कर नवमलिका श्रेष्ठ तमाल का स्वयं वरण कर रही हैं ॥6॥

विदूषक – स्पष्ट रूप से क्यों नहीं कहते हो। तुम्हें निश्चित रूप से कहना चाहिए पवनंजय का स्वयं वरण करती हुई अंजना के समान।

पवनंजय – (मुस्कुराहट के साथ) परिहास कर लिया।

विदूषक – यह परिहास नहीं है। शीघ्र ही यह अनुभव कर लोगे। नहीं तो क्या राजहंस को छोड़कर हंसी नीच बगुले का अनुसरण करती है। पहले विजयार्द्ध पर्वत रूपी हाथी की चूलिका का अनुसरण करने वाले सिद्धकूट सिद्धायतन में मन्दार निलय के भीतर गई हुई अन्य प्रिय सहचरी विद्याधर कन्याओं के साथ फूलों को चुनती हुई तुमने अंजना को देखा था।

पवनंजय – और क्या।

विदूषक – अनन्तर तुम्हें देखकर उसकी कुसुमाञ्जलिभी अपनी भीरता के साथ गिर गई थी। जब प्रिय सखियों ने उसका उपहास किया, तब समीप के मन्दार वृक्ष की ओट में छिपी हुई उसे मैंने तुम्हारे प्रति अभिलाषा से युक्त देखा था। अतः इस समय अन्यथा आशङ्का मत करो।

पवनंजय – (उत्कंठा के साथ)

उस समय प्रिया के हस्तपल्लव के अग्रभाग से जो फूल गिरे थे। उन्हीं को अमोघ बाण बनाकर कामदेव आज भी मेरे ऊपर प्रहार करता है ॥7॥

(देखकर) हो सकता है सुन्दर हंस के समान गमन करने वाली अंजना मेरे इन दोनों उत्सुक नेत्रों का उत्सव करे ॥8॥

(नेपथ्य में)

मातलिके, मातलिके।

विदूषक – यहाँ पर यह कौन बुला रही है। तब तक इस तमाल वृक्ष की ओट में छिपकर एक ओर होकर देखते हैं।

पवनंजय - जैसा आप कहें । दोनों वैसा ही करते है ।
(प्रवेश करके),

मधुकरिका - मालसिके ।
(प्रवेश करके),

प्रमदवन पालिका- (राजकुमारी अंजना की नाटक सूत्रधारिणी मधुकरिका मुझे क्यों बुला रही है) (समीप में जाकर) सखि, मुझे क्यों बुला रही हो ?

प्रथमा - सखि, तुम शीघ्र कहाँ जा रही हो ?

द्वितीय - मुझे स्वामिनी मनोवेगा ने आज्ञा दी है कि पुत्री अंजना का कल स्वयंवर है। अत: औषधिमाला को गूँथने के लिए संतान प्रमुख विकासोन्मुख मङ्गल पुष्पों को चुनकर लाइए ।

प्रथमा - सखी, इसे रहने दो । यहाँ पर तुमने राजकुमारी अंजना को देखा ?

द्वितीया - सखि । वह प्रियसखी वसन्तमाला के साथ केलीवन में संगीतशाला में प्रविष्ट हो गई है ।

प्रथमा - तो मैं जाती हूँ ।

द्वितीया - सखि ! जरा ठहरो । फिर से जाना सम्भव है ।

प्रथमा - सखि ! क्या ?

द्वितीया - सखि, तुम क्या मानती हो । कौन महाभाग्यशाली इस माला को धारण करेगा?

प्रथमा - यहाँ विचार क्या करना ? तीनों लोकों में जिसका विशेष रूप सौभाग्य प्रशंसनीय है, ऐसा प्रह्लाद का पुत्र पवनंजय यहाँ समर्थ है ।

द्वितीया - सखी, मैंने भी यही सोचा था । चन्द्र ही चाँदनी के योग्य है ।

विदूषक - मित्र सुनो, सुनो । जैसा मैंने कहा था, वैसा ही ये दोनों कर रही हैं ।

पवनंजय - कौन निश्चय करने में समर्थ है । भाग्यों का परिपाक जानना कठिन है ।

प्रथमा - सखि, तुम जाओ । मैं भी राजकुमारी की समीपवर्तिनी होती हूँ ।

द्वितीया - वैसा ही होगा । (चली जाती है)

मधुकरिका - जब तक मैं केलीवन को जाती हूँ ।
(घूमती है)

पवनंजय - मित्र, हम भी बिना दिखाई दिए इसके पीछे चलते है ।

विदूषक - तो इधर आइए, इधर (दोनों घूमते हैं)

मधुकरिका - यह वन है, तो प्रवेश करती हूँ ।
(अनन्तर अञ्जना और सखी प्रवेश करती हैं)

अंजना - हे सखी वसन्तमाला, तुम चुप क्यों बैठी हो । कुछ कहो ।

वसन्तमाला - यदि यह बात है तो सुनने योग्य सुनो ।

अंजना - (मन ही मन) मैं सावधान हूँ ।

वसन्तमाला - विजयार्द्ध के छोर पर विद्याधर लोक में अप्रतिम शोभा वाला आदित्यपुर नामक नगर है । उसमें समस्त विद्याधरों के द्वारा धारण किए गए चरणों वाले प्रह्लाद नामक राजर्षि हैं ।
उसके वसुमती (पृथ्वी) के साथ दूसरी पत्नी केतुमती है ।

वसन्तमाला - उन दोनों का विद्याधर लोक की प्रशंसा का एक स्थान भूत पवनंजय नामक पुत्र है ।

अंजना - कहाँ से यह उस व्यक्ति का वर्णन करती है ।

वसन्तमाला - यह एक दूसरी बात यहाँ प्रस्तुत है । पूर्व सागर के समीप में स्थित दन्ति पर्वत पर रहने वाला महेन्द्र के समान विद्याधर राज महेन्द्र है ।

अंजना - है ।

वसन्तमाला - उस महेन्द्र राज के अनुरूह द्वीप के स्वामी विद्याधर प्रतिसूर्य की बहिन मनोवेगा से असाधारण कान्ति रूपी लक्ष्मी से समस्त अप्सराओं के रूप की हँसी उड़ाने वाली अंजना उत्पन्न हुई ।

अंजना - अप्रियभाषिणि ! मेरी अधिक प्रशंसा मत करो ।

वसन्तमाला - जैसी कथा स्थित है, उसी प्रकार कहना चाहिए ।

अंजना - ठीक है, फिर ।

वसन्तमाला - अनन्तर यह कन्या अन्य विद्याधर कन्याओं के साथ फूलों के चुनने का मन बनाए हुए सिद्धकूट के बाहर मन्दार उद्यान में प्रविष्ट हुई ।

अंजना - सखि ! तुम क्या कहना चाहती हो ।

वसन्तमाला - अनन्तर वहीं प्रविष्ट उस कामदेव के द्वारा नियुक्त पवनंजय ने अपनी इच्छा से चुने हुए नए-नए फूलों से जिसकी अञ्जलि भरी हुई है, ऐसी अंजना को देखा ।

अंजना - इस प्रलाप से बस करो ।

वसन्तमाला - (मुस्कराकर) इससे अधिक क्या । तुम्हीं जानती हो ।

अंजना - (मन ही मन) क्या इसने तब मेरे हृदय को जान लिया ।

मधुकरिका - (देखकर) यह राजकुमारी है । इसके समीप में जाती हूँ (समीप में जाकर) राजकुमारी की जय हो ।

अंजना - सखि, बैठो ।

मधुकरिका - जो राजकुमारी की आज्ञा । (बैठती है)

वसन्तमाला - सखि मधुकरिका, कुछ कहना चाहती हो, ऐसी लक्षित हो रही हो ।

अंजना - वह क्या ।

मधुकरिका - इस समय तुम्हारे स्वयंवरोत्सव के लिए पवनंजय, विद्युत्प्रभ, मेघनाद प्रमुख राजपुत्र आए हुए हैं ।

अंजना - (मन ही मन) क्या वह भी आया है ।
(लज्जा का अभिनय करती है)

वसन्तमाला - कल कैसे लज्जित नहीं होगी ।

विदूषक - (कान लगाकर) - मित्र निकट में स्त्री का शब्द है ?

पवनंजय - तो केले के झुरमुट में छिपकर देखते हैं । (दोनों वैसा ही करते हैं) ।

पवनंजय - (अंजना को देखकर) सौभाग्य से इस समय दर्शनीय वस्तु देख ली । (अनुराग सहित)

जो सुकुमार विलास का हावभाव है, जो कामदेव की आराधना का साधन रूप धन है । मेरा जो शरीरधारी प्राण है, वह यह इस समय सम्मुख आ गया है । ।।9।।

विदूषक – मित्र, सही बात तो यह है कि यह तुम्हारे ही योग्य है ।

मधुकरिका – राजकुमारी, तुमने समस्त राजकुमारों के चित्र देख लिए । तो जरा कहदे किस महाभाग्यशाली के प्रति तुम्हारा हृदय उत्कण्ठित है ।

अंजना – (मन ही) कल ही निश्चित रूप से जान जाओगी । लज्जा के साथ चुप रहती है ।

पवनंजय – और, स्त्रियों को लज्जा भूषित करती है, यह बात उचित ही है । सुन्दर भौंहवाली की अन्तरङ्ग के भाव को न कहने में असमर्थ सी मन्द मुस्कराहट लज्जा के समान दूसरा प्रसाधन हो गई है ॥10॥

वसन्तमाला – सखी मधुकरिका, राजकुमारी ने अपने भावों को छिपा लिया है । तुम भावों को जानने वाली नाटक की सूत्रधारिणी हो । अतः स्वयं जानने में क्यों समर्थ नहीं हो ।

मधुकरिका – सखि, ठीक ही कहा है । अतः समीपवर्ती इस स्वयंवर का अभिनय करती हुई मैं ही तुम्हें दिखला दूँगी ।

वसन्तमाला – सखि, ठीक कहा ।

मधुकरिका – मैं नायिका की सखी मिश्रकेशी होती हूँ । तुम राजकुमारी हो जाओ ।

वसन्तमाला – इस समय राजपुत्र की भूमिका कौन ग्रहण करेगी ?

विदूषक – यह यहाँ पर एक निकटवर्ती है ।

पवनंजय – मूर्ख, विश्वासपूर्वक की गई लीला को भङ्गमत करो ।

मधुकरिका – स्वयं यह राजकुमारी एक राजपुत्र होगी ।

वसन्तमाला – अन्य राजपुत्र कौन होंगे ?

मधुकरिका – ये प्रत्येक स्तम्भ की शालभञ्जिकायें अन्य राजपुत्र होंगे ।

वसन्तमाला – सखि, ठीक है, ठीक है । राजकुमारी किस राजपुत्र की भूमिका ग्रहण करें।

मधुकरिका – यह पवनंजय की भूमिका ग्रहण करें । ये शालभञ्जिकायें (पुतलियाँ) विद्युत्प्रभ, मेघनाद प्रमुख राजपुत्रों की भूमिका ग्रहण करें ।

वसन्तमाला – सखि, वैसा ही होगा ।

अंजना – (मन ही मन) सखि, ठीक है । (प्रकट में) मुझे क्यों परेशान कर रही हैं।

दोनों – तुम्हें कौन परेशान करता है । आप विश्वासपूर्वक आयें ।
(अंजना मुस्कराती है)

पवनंजय – (हर्ष पूर्वक) मुझे यहाँ भी अपने बहुत मानना चाहिए । निश्चित रूप से मेरा आज यह मिलन के बिना प्राण के समान समागम हो गया है । जो कि यह अंजना 'मैं पवनंजय हूँ', इस प्रकार बैठी हुई है ॥11॥

विदूषक – जैसा मैंने सोचा था, उसी प्रकार यह भी समर्थन कर रही है, यह मैं अनुमान करता हूँ ।

वसन्तमाला – सखि, यह औषधिमाला कौन है ।

मधुकरिका – यह मोतियों की माला औषधिमाला हो ।

वसन्तमाला – सखि, ठीक है । अब देर क्या है । तो हम अभिनय करें ।

मधुकरिका – सखि, वैसा ही होगा । (संस्कृत का आश्रय लेकर) पुत्री इधर से (आओ)।

अंजना – ओह, स्वयं आर्या मिश्रकेशी के स्वर का योग है ।
(बनावटी मिश्रकेशी और अंजना घूमती हैं)

कलावती मिश्रकेशी-हम लोग स्वयंवरमण्डप में प्रविष्ट हो गए हैं। (चारों ओर देखकर), ओह, स्वयंवर मण्डप की उत्कृष्ट शोभा है। क्योंकि। इधर-उधर चलते हुए वन्दियों के समूह के जय शब्द के कोलाहल से मिश्रित, घबड़ाए हुए सैकड़ों द्वारपालों के द्वारा हटाने की आवाज के कोलाहल से, प्रारम्भ किए जाते हुए मङ्गल संगीत और पीटे गए कोमल मृदङ्ग की गम्भीर ध्वनि से किन्नरी स्त्रियों के द्वारा बजाई गई वीणा के तार की झंकार का अनुसरण करने वाले विद्याधर स्त्रियों की गीत के स्वर से श्रवणपथ शब्दमय के समान हो रहा है। अन्तःपुर के कमरे वेत्रयुक्त से दिखलाई पड़ रहे हैं। रत्नमयी फर्श से युक्त भूमिभाग सिंहासन युक्त से दिखाई पड़ते हैं। दशों दिशायें डुलाए जाते हुए चंवर की वायु मे बिखेरे गए पटवास के चूर्ण से युक्त सी सुशोभित हो रही है। आभूषणों की प्रभा के समूह से युक्त सा आकाशतल सुशोभित हो रहा है। स्वयंवर मण्डप राजाओं से युक्त सा प्रतीत हो रहा है।

निश्चित रूप से यहाँ मणिमय मञ्च पर गए हुए राजा लोग चारों ओर परिजनों से घिरे होकर इस समय मानों तुम्हारें ही आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं ॥12॥

तो राजकुमारी इस ओषधिमाला को ग्रहण करें।

(कृतक अंजना लज्जापूर्वक लेती है)

कृतकमिश्रकेशी- (हाथ से प्रत्येक शालभञ्जिका की ओर इशारा करती हुई)

यह कौशलों का नाथ है, यह मगधपति है, यह पाञ्चालराज है, यह वङ्गों का स्वामी है, यह मलयपति है, यह केकय देश का अधीश्वर है, यह हरिवंशियों का स्वामी है, यह कुरुराजा है, यह वल्मीक देश का राजा है। पुत्री! इनमें से इस समय कौन तुम्हारा पति हो सकता है ॥13॥

(कृतक अंजना चुप रहती है)

कृतकमिश्रकेशी -(दूसरी ओर जाकर नाटकीयतापूर्वक शालभञ्जिका की ओर निर्देश करके)

समस्त राक्षससमुदाय को क्षुब्ध करने वाला अपनी भुजाओं के युगल के बल से खेल ही खेल में शत्रुओं के समूह को जीतने वाला, पिता के मुख के समान जिसका प्रभाव दिखाई देता है। ऐसा राक्षसों के स्वामी रावण का यह प्रियपुत्र यहाँ विद्यमान है ॥14॥

(कृतक अंजना चुप रहती है)

कृतकमिश्रकेशी -(दूसरी ओर जाकर नाटकीयतापूर्वक शालभञ्जिका की ओर निर्देश करके)

जो विद्याधरों में विख्यात है, समस्त विद्याओं में विशारद है ऐसा हिरण्यप्रभु का पुत्र यह विद्युत्प्रभ है ॥15॥

(कृतक अंजना चुप रहती है)

कृतकमिश्रकेशी -(दूसरी ओर जाकर मुस्कराकर अंजना की ओर निर्देश कर)

स्वाभाविक रूप से जिसका सुन्दर शरीर है, जो गुणों का उत्पत्ति स्थल है, भगवान् कामदेव का जो प्रशंसनीय स्थान है, अधिक कहने से क्या, जो तुम्हारे योग्य है ऐसा प्रहलाद राज का पुत्र यह पवनंजय है ॥16॥

(कृतक अंजना लज्जा और अनुरागपूर्वक अंजना के कण्ठ में हार छोड़ती है)

अंजना - (मुस्कराकर मन ही मन) वसन्तमाला ठीक है, ठीक है ।

पवनंजय - (हर्षपूर्वक) यह ठीक है, ठीक है ।

विदूषक - ठीक है ।

मधुकरिका - वसन्तमाला ठीक है, तुमने राजकुमारी के हृदय का ठीक पता लगाया ।

वसन्तमाला - राजकुमारी के पति की भूमिका को धारण करती हुई यहाँ मेरी तुम ही गुरु हो ।

अंजना - (मुस्कराकर) मेरे हृदय को जान लिया ।

दोनों - कैसे नहीं जाना । पहले मन्दारोद्यान में जाना । इस समय जिसे पसीना आ रहा है । ऐसे पुलकित अङ्गों से तुम्हारा सानुराग हृदय स्पष्ट हुआ था ।

पवनंजय - हृदय का भली भाँति अनुमान होता है क्योंकि - फैलते हुए पसीने के जल के सिंचन से अन्तरङ्ग में मानों अनुराग अङ्कुरित हो रहा हो, इस प्रकार इसकी अङ्गयष्टि विकसित रोमों को धारण कर रही है ॥17॥

अंजना - (मुस्कराकर) सामान्य हृदय सखी जनों के लिए क्या जानना कठिन है ।

विदूषक - मित्र ! और यहाँ ठहरने से क्या ? आओ हम दोनों चलें ।

पवनंजय - जैसा मित्र ने कहा ।
(दोनों चले जाते हैं)

वसन्तमाला - अधिक कहने से क्या । और सब तैयार है । पवनंजय यहाँ देर कर रहा है ।

विदूषक - देर नहीं कर रहा है । यह शीघ्रता कर रहा है ।
(अंजना देखकर लज्जापूर्वक उठकर दूसरी ओर चली जाती है)

वसन्तमाला और मधुरिका - (देखकर) ओह स्वामी (समीप में जाकर) स्वामी की जय हो ।

पवनंजय - (मधुकरिका के प्रति मुस्काकर अंजना और वसन्तमाला की ओर निर्देश कर) आर्ये मिश्रकेशि, क्या पाणिग्रहण महोत्सव के बाद पवनंजय का अंजना को छोड़कर जाने का समय है ।

सभी - क्या आदि से लेकर सब देख लिया ।

मधुकरिका - (मुस्कराकर) तो हाथ पकड़कर इन्हें रोको ।

पवनंजय - आप जैसा कहें । (अंजना के समीप जाकर, हाथ से पकड़कर, मुस्कराकर) प्राणों के समान इस व्यक्ति को छोड़कर यहाँ से तुम्हारा जाना ठीक नहीं है । निश्चित रूप से अंजना-पवनंजय की विहारभूमि है ॥18॥

अंजना - (मन ही मन) ओह, वचनों की गम्भीरता ।

मधुकरिका और वसन्तमाला - (मुस्कराकर) स्वामी ने ठीक कहा ।

विदूषक - पाणिग्रहण महोत्सव हो गया ।
(नेपथ्य में)
राजकुमारी इधर से, इधर से । स्नान करने का समय बीत रहा है । इस समय कन्यान्तःपुर में ही आना चाहिए । प्रसाधन हाथ में लिए हुए तुम्हारी सारी मातायें प्रतीक्षा कर रही है ।

वसन्तमाला - राजकुमारी जल्दी करें। यह आर्या मिश्रकेशी बुला रही है। स्वामी, इस समय हाथ छोड़ो। कल ही निश्चित रूप से ग्रहण करना।

पवनंजय - जैसा आप कहें (अभिलाषा पूर्वक छोड़ देता है)

दोनों - राजकुमारी, इधर से इधर से।

सभी घूमकर निकल जाती है।

पवनंजय - (उस मार्ग की ओर दृष्टिपात करता हुआ, उत्कण्ठा सहित) क्या बात है, प्रिया के चले जाने पर भी प्रौढ़ स्मृति मानों साक्षात्कार कर रही है। क्योंकि-

मेरे द्वारा हाथ से पकड़ी जाने पर भी वह लज्जापूर्वक सखी जनों से मानों छिप रही है। कहीं जाने पर भी बहाने से विलम्ब करती हुई चञ्चल दृष्टि को मानों हरती है। ॥19॥

विदूषक - मित्र, यह सूर्य आकाश के मध्य आरुढ़ हो गया और भोजन का समय बीत रहा है, अतः हम भी चलते है।

पवनंजय - जो आपको अच्छा लगे। ओह मध्याह्न हो गया है। इस समय निश्चित रूप से -

जलपक्षी तालाब के जल में ताप को दूर कर किनारे के वृक्षों की छाया का आश्रय ले रहे हैं। मोर पंखों को समेटकर गाढ़ निद्रा पाकर उद्यान के वृक्षों की शाखा रूप निवासयष्टि का सेवन कर रहे हैं। ॥20॥

(परिक्रमा देकर दोनों चले जाते हैं)

इस प्रकार हस्तिमल्ल रचित अंजना पवनंजय नामक नाटक में पहला अङ्क समाप्त हुआ।

द्वितीय अङ्क

(अनन्तर वसन्तमाला प्रवेश करती है)

वसन्तमाला - ओह महाराज प्रह्लाद की राजधानी असाधारण रूप से सुन्दर लग रही है। अधिक कहने से क्या विद्याधर लोग इस आदित्यपुर का आलंकारिक वर्णन कर रहे हैं कि अमरावती के सदृश महेन्द्र की राजधानी को छोड़कर हम यहाँ पर सुख से रह रहे हैं। ओह, स्वामी के बन्धुजन की उदारता, जिससे हम लोगों का भी राजकुमारी के सदृश आदर सत्कार हो रहा है। यह बात यहीं रहे। यह बात विशेष रूप से आश्चर्य के योग्य है कि राजकुमारी के स्वयंवर के दिन इन दोनों का सुयोग्य मिलन है, इस प्रकार समस्त (दूषित अभिप्राय वाले) राजाओं ने प्रतिकूलता को छोड़कर स्वामी का और राजकुमारी का सत्कार किया है अथवा कौन स्वामी के प्रतिकूल हो सकता है। निश्चित रूप से कभी भी राजसिंह हाथी के बच्चों के द्वारा नियुक्त नहीं होता है। राजकुमारी सर्वथा महान् भाग्यशालिनी है। यहाँ पर अधिक क्या कहा जाय। स्वामी के साथ बहुत समय तक वृद्धि को प्राप्त होओ। (परिक्रमा देकर) इस समय स्वामी कहाँ है? (सामने देखकर) ओह, क्या यह यहाँ बैठे हैं? (अनन्तर बैठा हुआ विदूषक प्रवेश करता है)

विदूषक - माननीया वसन्तमाला ।

वसन्तमाला - क्या आर्य प्रहसित हैं ?

(समीप में जाता है)

विदूषक - माननीया, मुझे बिना देखे ही क्यों जा रही है ?

वसन्तमाला - मैंने आर्य को नहीं देखा । इस मृदङ्ग के सदृश कुक्षि से छिप गए थे ।

विदूषक - दासी की पुत्री, क्या तुम्हारे समान मेरा ही उदर अत्यधिक दुर्बल हो ।

वसन्तमाला - हम तुम्हारे सदृश पाने वाली कौन होती है । आर्य आप बैठे । कैसे आप यहाँ बैठे हुए हैं ?

विदूषक - माननीया, मित्र की आज्ञा से उन्हें बुलाने के लिए आता हुआ इस कठिनाई से भरे जाने वाले पेट के भार से आक्रान्त होकर मुहूर्त भर के लिए यहाँ बैठा हुआ हूँ ।

वसन्तमाला - आर्य, आज तुम्हारा यह विशेष रूप मे बढ़ा हुआ और कठिनाई से भरा जाने वाला उदर कहाँ से है ? (मुस्कराकर) क्या बढ़ा पेट है अथवा गर्भ है ।

विदूषक - अरी कुम्भदासी, ऐसा नहीं है । बीत रात मैंने भी अनुदारता पूर्वक उन माननीया के अपने हाथ से दी हुई स्वस्तिवाचन पूर्वक पूरियों से यह पेट भर दिया था । आज पुनः प्रातःकाल स्वामिनी के द्वारा अन्तःपुर में जीरे और मिर्च की बहुलता वाला दही से मिश्रित नाश्ता खा लिया । तुम इस समय कहाँ जाओगी ?

वसन्तमाला - इस समय स्वामी कहाँ है, यह जानने के लिए कुमार के भवन में जा रही हूँ ।

(नेपथ्य में)

उद्यान के दो अध्यक्ष - अरे अरे, उद्यान के अधिकारी समस्त पुरुषों, आप लोग सुनिए।

पहला - सरस मलय वायु की छटा से युक्त प्रमदवन के मध्य चित्रमण्डपों में मणिनिर्मित शालभञ्जिकाओं के स्तनकलशों में पुनः लेप लगा दीजिए ॥1॥

दूसरी बात यह कि - निरन्त अत्यन्त मात्रा में मिले हुए कपूर के चूर्णों से जिनके पत्तों के समूह विकसित हैं ऐसी केतकियों के पराग से उपवन के तालाबों के तीरवर्ती आँगन में शीघ्र ही इच्छानुसार रेतीले तट बनाओ ॥2॥

द्वितीय - विशेष रूप से दर्शनीय उपवन की वृक्षों के नीचे के चबूतरों पर मरकत मणि से निर्मित फर्शों पर नए-नए कुङ्कुम के पराग से पत्र रचना कर दो ॥3॥

और भी - सुगन्धित फूलों की गन्ध को प्रकट करने वाले जल के प्रवाह से जिसका परिसर भरा हुआ है, ऐसे नवीन अशोक वृक्षों के थावलों से युक्त रहते हुए चन्द्रकान्त मणि से युक्त फव्वारों (धारागृहों) में तत्क्षण ही भली प्रकार कृत्रिम नहरों को तैयार करो ॥4॥

(दोनों सुनते हैं)

वसन्तमाला - आर्य, यह क्या है ?

विदूषक - इस समय माननीया के साथ प्रिय मित्र प्रमदवन के मध्य बकुल उद्यान में प्रवेश कर रहे हैं अतः उद्यानाध्यक्षों के द्वारा समस्त प्रमदवन भूमि सजाई जा रही है । अतः शीघ्र ही जाकर तुम वहाँ पर उन्हें लाओ । मैं भी प्रिय मित्र के समीप जाऊँगा ।

वसन्तमाला - आर्य, ऐसा ही होगा । (दोनों चले जाते हैं)

प्रवेशक :

(अनन्तर पवनंजय प्रवेश करते हैं)

पवनंजय - ओह, नव वधू से मिलन का उत्सव कामीजनों के मन को आकृष्ट करने में एक रस, कामदेव की किसी अन्य रस में अनुरक्ति करता है ।

इस समय - अस्पष्ट अवलोकनों से, अविकसित दाँतों की किरणों से, मन्द मुस्कराहट से, [illegible] मैं मन [illegible] से और मधुर-[illegible]विशिष्ट अक्षरों से, पुनः प्रार्थित वस्तुओं के पाने से, ललित आलिङ्गनों से, विशेष प्रकार की थकानों से विश्वस्त भी अंजना लज्जा को न तो अधिक छोड़ती है और लज्जा का न अधिक सेवन करती है ॥5॥

यहाँ बहुत क्या ? स्वभाव से ही नवसमागम स्वयं ही कामिनियों के न कहे हुए भावों को प्रकट करता है । क्योंकि -

मेरे समीप में स्तनों के समूह को आक्रान्ति की थकान से क्लेशित पसीना निकलने पूर्वक निरन्तर स्पर्शों से रोमाञ्चित, किसी बहाने से सखियों से छिपी हुई, जाने के लिए कदमों को अलसाए हुए रखने से अंजना मेरे मन को किसी अन्य ही दशा पर पहुँचा रही है ॥6॥

(सोचकर) निश्चित रूप से रात्रि की समाप्ति के समय ही हम लोग निवास भवन से निकले । आज- अत्यधिक जड़े सुवर्णमय प्रासाद के अग्रभाग पर सूर्य प्रायः चला गया है ।

यह प्रातः कालीन आतप गुण को दुगुना कर रहा है । यह कबूतरों का समूह एक महल से दूसरे महल की ओर विहार कर रहा है । बहुत सारे क्रीड़ा मयूर प्रेक्षाभवन की ओर जाने को प्रवृत्त हो गए हैं ॥7॥

प्रिया के बिना थोड़ा सा भी समय नहीं बिता सकता । निश्चित रूप से मेरे दोनों नेत्र उसके मुख कमल को देखने की उत्सुकता रूप स्वभाव वाले हैं। दोनों हाथ स्तनतटयुगल की क्रीडा में अत्यधिक चंचल हैं, दोनों स्कन्ध प्रदेश हठपूर्वक भुजलताओं के आरोपण की सम्पन्नता चाहते हैं उस सुकोमल नयन वाली अंजना के बिना मन क्षण भर के लिए भी व्यवहार करने में समर्थ नहीं है ॥8॥

(सोचकर) प्रातःकाल ही प्रिया को बुलाने के लिए मेरे पास से मित्र प्रहसित ने प्रस्थान किया था । तो अब भी क्यों विलम्ब कर रहा है । (प्रवेश कर)

विदूषक - यह प्रियमित्र मेरे ही आगमन की प्रतीक्षा करते हुए स्वर्णमयी छज्जे पर बैठे हुए हैं । तो मैं इनके समीप जाता हूँ (समीप में जाकर) प्रिय मित्र की जय हो ।

पवनंजय - मित्र, क्या प्रिया आ गई ।

विदूषक - मित्र बकुलोद्यान में आएगी । दोनों वहीं चले ।

पवनंजय - (उठकर) तो प्रमद वन का मार्ग बतलाइए ।

विदूषक - प्रिय मित्र इधर से, इधर से ।

(घूमते है)

विदूषक - (सामने की ओर निर्देश कर) यह प्रमदवन का द्वार है।
प्रिय मित्र प्रवेश करें।

पवनंजय - आगे से प्रवेश करो। (दोनों प्रवेश करते हैं)

पवनंजय - (देखकर) अरे निश्चित रूप से नई तोड़ी हुई स्थल कमलिनी के पुष्प समूह से गिरे हुए अत्यधिक आसव से जिसका भूमिभाग सिंचित है, शुद्ध अन्तः पुर में भोली-भाली सुन्दर स्त्रियों के स्वयं सिंचन से जहाँ नवीन मन्दार का वृक्ष वृद्धि को प्राप्त है, अत्यधिक मधुपान के लम्पट भौरों के समूह से बिखरे गए नए विकसित सहकार (आम्र) पुष्प के गुच्छों के समूह से टपकते हुए मकरन्द की धूलिसमूह से आकाश रूपी आँगन जहाँ गुलाबी वर्ण का हो रहा है, मद से अत्यन्त शब्द करने वाले कोयलों के समूह की कूजन के कोलाहल निरन्तर जहाँ कामदेव जाग रहा है, सुन्दर विलासिनी स्त्रियों के बायें चरण कमल के प्रहार रूप अधिक लाड़ प्यार से निकलते हुए निरन्तर फूलों के गुच्छों से जहाँ लाल अशोक का वृक्ष पुलकित हो रहा है मद के समूह से मन्थर तोता, मैना के पंखों से जहाँ के वृक्षों के शिखर कोमल हो गए हैं, सुखकर और शीतल मन्द पवन से इधर-उधर हिलने वाले हिम के जल कणों से आर्द्र स्पर्श वाले, वसन्त का समय आने से मनोहर प्रमदवन की विशेष रमणीयता आश्चर्यजनक है। यहाँ पर निश्चित रूप से - समीपवर्ती भ्रमर छिद्र रहित कनैर के गिरे हुए फूलों के पराग से रंग गए हैं। चतुर्थांश वेदी के स्फटिक मणि निर्मित तटों पर सुवर्ण की शोभा हो गई है। डंठलों से गिरे हुए फूलों से स्वयं रचे गए सुन्दर रत्न स्थलों वाले लतामण्डपों के अन्दर प्रत्येक दिशा में क्रीड़ा संभोग शय्या बन गई है ॥9॥

विदूषक - यह बकुल उद्यान का द्वार है। यहाँ पर बैठकर उनकी प्रतीक्षा करें।

पवनंजय - आप जैसा कहें
(दोनों बैठते हैं)

पवनंजय - इतने समय तक अंजना को प्रमदवन भूमि में प्रविष्ट हो जाना चाहिए। (सोचकर) यहाँ कामियों के हृदयों में क्रम से हजारों उत्कण्ठाओं से बद्ध हजारों सोपान परम्पराओं पर काम अधिरोहण कर रहा है; क्योंकि
ललनाओं का चित्त सुनकर देखने की शीघ्रता करने वाला होता है। अनन्तर देखकर समागम की प्रार्थना करने वाली चिन्ता का सेवन करता है। समागम पाकर पुनः विरह न होने के उपाय को चाहता है। यह कामोन्माद प्रत्येक कदम पर वृद्धि को प्राप्त होता है ॥10॥
(सुनकर) क्या प्रिया आ ही गई
यह उसका यथोयोग्य सुन्दर मणियों वाले मञ्जीरों के मनोहर शब्द से युक्त प्रवेश के समय के मङ्गल बाजे की ध्वनि सुनाई पड़ रही है ॥11॥
(अनन्तर अंजना और वसन्तमाला प्रवेश करती हैं)

वसन्तमाला - राजकुमारी इधर से आइए, इधर से
(घूमती हैं)

विदूषक - क्या माननीया आ गई ।

पवनंजय - (देखकर) मञ्जरों की आवाज के लोभ से हंसों ने, निःश्वास की वायु के सुख सौरभ से भौंरों ने, करधनी की आवाज के रस से सारसों ने यह प्रमदवन की अधिष्ठात्री देवी ही मानों प्राप्त की है ॥12॥

विदूषक - मित्र, आप उठें, जब तक बकुल नामक उद्यान में प्रवेश करें ।

पवनंजय - जैसा आप कहें (दोनों उठते हैं) ।

विदूषक - (समीप में जाकर) आपका कल्याण हो ।

वसन्तमाला - (समीप में आकर) स्वामी की जय हो ।

पवनंजय - (अंजना को हाथ में पकड़कर) प्रिये इधर से, इधर से
(सभी घूमते हैं)

पवनंजय - (देखकर) प्रिये बकुल नामक उद्यान की उत्कृष्ट लक्ष्मी को देखो । क्योंकि- यह नवीन बकुल आज पुष्पों से विद्याधरियों के कुरले के आसव के सिंचन रूप दोहले के रसास्वादन से उस सौरभ को धारण कर रहा है । गीले महावर से रंगे चरणकमल से सत्कार को प्राप्त लाल अशोक का वृक्ष फूलों से उसकी लालिमा की शोभा रूप गुण को धारण कर रहा है ॥13॥
मित्र चित्रमण्डप को ही चलते हैं । तो इस समय उसी की ही चरण चौकी का मार्ग बतलाइए ।

विदूषक - इधर से (घूमते हैं)

विदूषक - (सामने निर्देश कर) मित्र, यह चित्रमण्डप है । इसके समीप चलते हैं ।
(सभी प्रवेश का अभिनय करते हैं)

वसन्तमाला - स्वामी, यह नए खिले हुए पुष्पों के पराग से स्वच्छ रेशमी वस्त्र के चादर से युक्त शय्या है । स्वामी इसे अलङ्कृत करें ।
(सभी यथायोग्य बैठते हैं)

पवनंजय - (स्पर्श का अभिनय कर)
प्रिये ! तत्क्षण फूली हुई बकुल की कलियों से निकली हुई मदिरा के कणों को ले जाने वाली सुन्दर भ्रमरी का यह मधुर गीत है । तुम्हारे तत्क्षण गमन के थकान से उत्पन्न पसीने को हरने वाला ठंडा मलयपवन मन्द-मन्द चल रहा है ॥14॥

विदूषक - सुख से सेव्य यह प्रदेश मानों आँखों को घुमा रहा है ।

वसन्तमाला - स्वामी, यह आर्यप्रहसित इस समय बैठे-बैठे अत्यधिक ऊँघने के कारण अश्वशाला के बन्दर की लीला का अनुसरण कर रहा है ।
(अंजना और पवनंजय मुस्कराकर देखते हैं)

वसन्तमाला - क्या यह आकाश में जुगाली का अभ्यास कर रहा है ।

विदूषक - (स्वप्न देखता है) माननीया, ये लड्डू बड़े स्वादिष्ट हैं ।
(सभी हंसते हैं ।)

विदूषक - (गिरता हुआ जागकर और बैठकर लज्जापूर्वक) हे मित्र, अकारण क्यों हँस रहे हैं ?

पवनंजय - (मुस्कराकर) कुछ नहीं ।

वसन्तमाला - (हँसी के साथ) अरे भूरे बन्दर, स्वप्न में भी लड्डुओं को नहीं भूलते हो।

विदूषक - (कोप के साथ) मित्र, यह दासी की पुत्री आप दोनों के आगे भी मेरा तिरस्कार करती है । अत: यहाँ ठहरने से क्या ?

(क्रोध के साथ उठता है)

अंजना - (मुस्कराहट के साथ) आर्य, मत, ऐसा मत करो । यह अविनीत है । क्षमा करो ।

पवनंजय - मित्र, प्रिया रोक रही है ।

(विदूषक मानों न सुन रहा हो, इस प्रकार शीघ्र चला जाता है)

वसन्तमाला - हूँ, कुपित हुए आर्य प्रहसित चले गए । सो चलकर इसे मनाती हूँ । (विदूषक के समीप जाकर) आर्य मत कुपित हो, मत कुपित हो ।

विदूषक - माननीया, यदि मेरी निद्रा भङ्ग नहीं करोगी तो कुपित नहीं होऊँगा ।

वसन्तमाला - (जो आर्य को रुचिकर लगे) ।

विदूषक - जब तक मैं इस बकुल के चबूतरे पर नींद लेता हूँ ।

वसन्तमाला - आर्य ठीक है । मैं भी इधर-उधर मलय पवन का सेवन करती हूँ ।

विदूषक - माननीया वसन्तमाला, मुझे यहाँ अकेले सोने में डर लग रहा है । अत: तुम दूर नहीं निकल जाना ।

वसन्तमाला - (मुस्कराकर) आर्य, वैसा ही करूँगी । विस्वस्त होकर सोइए ।

(विदूषक नींद लेता है)

पवनंजय - हूँ प्रिये, यह स्थान एकान्त और रमणीय है । तो इस समय भी अभिलषित विश्वास के अवरोधक लज्जारूपी रस में तुम्हारी यह अनुरक्ति कौनसी है।

(अंजना लज्जा का अभिनय करती है ।)

पवनंजय - (अनुरोध पूर्वक)

तुम अपने अङ्गों को आलिङ्गन हेतु क्यों नहीं देती हो ? मुख रूपी चन्द्रमा को पान करने के लिए क्यों अर्पित नहीं करती हो ? मेरे दर्शन पथ में दृष्टि क्यों नहीं डालती हो ? बोलती क्यों नहीं हो, देवि । निरुद्धकण्ठ क्यों हो? ॥15॥ (नेपथ्य में महान् कोलाहल होता है)

विदूषक - (घबड़ाहटपूर्वक जागकर और उठकर) वसन्तमाला बचाओ, बचाओ ।

(घबड़ाई हुई प्रवेश करके)

वसन्तमाला - आर्य मत डरो ।

अंजना (घबड़ाहट के साथ) हूँ, यह क्या है ।

विदूषक - मैं यहाँ ठहरने से डर रहा हूँ । तो महाराज के पास आओ ।

(समीप में जाते हैं ।)

पवनंजय - (सोचकर) तात के प्रस्थान की भेरी का शब्द कहाँ से ।

विदूषक - ऐसा होना चाहिए ।

पवनंजय - विजयार्द्ध की गुफा से निकलने वाला, गुफा द्वार को प्रतिध्वनित करता हुआ, ऊपर की ओर गर्दन किए हुए मेघ की ध्वनि के उत्सुक पालतू मोरों को नचाता हुआ, शत्रुक्षत्रियों के कुलक्षय का एकमात्र सूचक, सम्पूर्ण रूप में आकाश

की रोके हुए पिता के प्रस्थान की भेरी की यह ध्वनि कहाँ से फैल रही है ? ॥16॥

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी – कुमार की जय हो। कुमार को देखने के लिए आए हुए ये अमात्य आर्य विजयशर्मा बकुल उद्यान के द्वार पर बैठे हैं।

पवनंजय – (अंजना से) प्रिये, इस समय अपने भवन की ओर ही जाओ।

अंजना – (उठती है) जो आर्य पुत्र आज्ञा दें।

वसन्तमाला – (उठकर) राजकुमारी, इधर से, इधर से।

(परिक्रमा देकर दोनों चली जाती हैं।)

पवनंजय – वैजयन्ति, शीघ्र ही प्रवेश कराओ।

प्रतीहारी – जो कुमार आज्ञा दें। (निकल कर अमात्य के साथ प्रवेश कर) अमात्य इधर से, इधर से।) (दोनों घूमते हैं)

अमात्य – ओह, महाराज की महिमा। क्योंकि

राजा के प्रति अमात्य की निष्ठा कही जाती है, उसका व्यवहार यहाँ पर सदोष दिखाई दिया। स्वयं ग्रहण किए हुए उचित कार्य में लगे हुए, जोकि इसकी सेवा रूप मनोरंजन के लिए हैं। ॥17॥

प्रतीहारी – (सामने की ओर निर्देश कर) यह कुमार हैं, अमात्य, इनके समीप चलिए।

अमात्य – (देखकर) अरे कुमार हैं, जो कि यह –

दुर्निरीक्ष्य समस्त पैतृक तेज को धारण करते हुए आकाश के मध्य भाग को उल्लंघन करने वाले सूर्य के अहाते पर आक्रमण कर रहे हैं। ॥१८॥

(दोनों समीप जाते हैं)

पवनंजय – आर्य, अभिवादन करता हूँ।

अमात्य – कुमार, कुल की धुरा को धारण करने वाले होओ।

पवनंजय – वैजयन्ति, इनके लिए आसन लाओ।

प्रतीहारी – यह बेत का आसन समीप में है, अमात्य बैठिए।

अमात्य – (बैठकर) वैजयन्ति, समस्त परिजनों को मनाकर दरवाजा बन्द कर दो।

प्रतीहारी – जो अमात्य की आज्ञा। (चली जाती है)

पवनंजय – आपके आने का क्या प्रयोजन है।

अमात्य – कुमार, सुनिए।

पवनंजय – मैं सावधान हूँ।

अमात्य – कुमार ने सुना ही है कि दक्षिण समुद्र के मध्य में त्रिकूट पर्वत पर लङ्कापुरी में निवास करता हुआ राक्षसों का स्वामी दशग्रीव (रावण) है।

पवनंजय – है, सुना जाता है।

अमात्य – उसका पश्चिम समुद्र में स्थित पातालपुर में रहने वाले वरुण के साथ बहुत बड़ा विरोध था।

पवनंजय – अनन्तर क्या हुआ।

अमात्य – अनन्तर दशग्रीव ने भी खर और दूषण प्रभृति से अधिष्ठित बहुत बड़ी सेना को वरुण के प्रति नियोजित किया।

पवनंजय – अनन्तर

अमात्य – बहुत बड़ा संग्राम छिड़ने पर वरुण ने खर, दूषण प्रभृति को पकड़ लिया।

पवनंजय – अनन्तर

अमात्य – इस प्रकार के मानभङ्ग को धारण करते हुए दशमुख रावण ने खर दूषणादि को छुड़ाने के लिए दूत के मुख से महाराज से याचना की।

पवनंजय – अनन्तर।

अमात्य – इस प्रकार प्रार्थना किए जाने पर महाराज ने नगर की रक्षा के लिए कुमार को बुलाकर, उन्हें यहाँ ही ठहराकर स्वयं प्रस्थान प्रारम्भ कर दिया है।

पवनंजय – (हास्य पूर्वक) आर्य अस्थान में पिताजी का यह प्रस्थान का आरम्भ कहाँ से?

जिसने बहुत बड़े हाथी के मस्तक तट को विदीर्ण किया है, उस हाथी से छूटे हुए मोतियों की पंक्ति से जिसके दाँत रूपी भालों के छिद्र खुरदरे हो गए हैं ऐसा जो सिंह है, मान में महान् वह यह मृग के शिशु को मारने में लगा हुआ क्या प्रख्यात शौर्य के योग्य अपनी अन्य कीर्ति उत्पन्न कर रहा है? ॥19॥

तो इतनी सी बात पर मेरा ही जाना पर्याप्त है।

अमात्य – कुमार ने ठीक ही कहा है। क्योंकि –

जिनका पराक्रम बुझा नहीं है ऐसे विद्या से विनीत आप जैसे पुत्रों के रहने पर यथायोग्य रूप से इच्छानुसार कार्यभार स्थापित किए हुए राजा लोग सुखी होते हैं। ॥20॥

फिर भी बिना विचार किए हुए, क्षुद्र है, ऐसा मानकर वरुण की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। निश्चित रूप से उसके –

आवास स्थान की महिमा का उल्लंघन समुद्र भी नहीं कर सकता। सौ पुत्र शत्रुराजाओं के समूह को पीसने में कुशल है। स्वयंसेवी विद्याधर राजाओं का समूह भी प्रतीहार स्थान की अभिलाषा करता हुआ प्रतिदिन (अपने कार्यों को) पूर्ण करता है॥ ॥21॥

इस प्रकार प्रतिपक्ष के ऐसे पराजित होने पर महाराज का बहुत बड़ा यश होगा। तो अत्यन्त आवेग से बस करो। महाराज कुमार के राजधानी में वापिस आने की इच्छा करते हैं।

पवनंजय – (हंसकर) क्या यह आर्य को भी अनुमत है। तो शीघ्र ही देखिए –

क्रोध से पाताल तल से बलात् वेगपूर्वक निर्मूल उखाड़ी गई उस पातालपुरी को मैं समुद्र के मध्य डाल दूँगा युद्ध में गाढ़ रूप से छोड़े हुए, गिरते हुए बाणों के अग्रभाग से उगली हुई चिनगारियों वाली अग्नि की ज्वालाओं से ग्रास बनाए हुए शत्रुओं के लहू सूखें ॥22॥

अमात्य – क्या यह कुमार के लिए बहुत भारी है।

विदूषक – अमात्य ठीक कहा।

अमात्य – क्या कुमार ने युद्ध की प्रतिज्ञा कर ली।

पवनंजय – और क्या ।

अमात्य – तो महाराज ही यहाँ प्रमाण हैं । तो इस समय महाराज को ही देखते हैं ।

पवनंजय – जी हाँ । प्रथम सङ्कल्प है ।

विदूषक – तो प्रिय मित्र उठें ।

(सभी उठते हैं)

पवनंजय – धारा प्रवाह निकालते हुए शत्रुओं के खड्ग के गले से निकलते हुए, जो कि धारा के प्रवाह में छिपे हुए पश्चिम समुद्र में असमय ही सन्ध्या की लालिमा रचती हुई, बिना किसी बहाने के प्रत्येक दिशा में निबिड जलती हुई वाडवाग्नि की शङ्का करती हुई मेरी स्थिर खड्गयष्टि इच्छानुसार संग्राम लीला का अनुभव करे । ॥23॥

विदूषक – इधर से, इधर से ।

(परिक्रमा देकर सभी निकल जाते हैं)

हस्तिमल्ल के द्वारा विरचित अञ्जना पवनंजय नामक नाटक में द्वितीय अङ्क समाप्त हुआ ।

तृतीयो अङ्क

(अनन्तर विदूषक प्रवेश करता है)

विदूषक – वरुण की निराबाध सामग्री आश्चर्यजनक है । जो कि इतने समय तक प्रतिदिन युद्ध की भीड़ बढ़ रही है । युद्ध की धुरा सौ पुत्रों में निक्षिप्त होने से युद्ध रूपी आँगन में कदाचित् घुसा नहीं जा सकता अथवा यहाँ मित्र की प्रशंसा करना चाहिए जो इस प्रकार राजीव प्रमुख महान् बलशाली वरुण के सौ पुत्रों के परस्पर में प्रयुक्त महान विद्याओं से भयानक युद्ध के अग्रभाग में इन चार माह प्रतिदिन विशेष रूप से पराक्रम करते हुए विजय के द्वारा वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं । (सांस लेकर) यह समस्त संग्राम की घटना प्रहसित के ही दुश्चरित का परिपाक है जो इस प्रकार एक ओर इस कठिनाई से सुने जाने वाले समुद्र के घोष से, एक ओर कठोर, सन्नद्ध सेना के कोलाहल से, एक ओर भयानक रूप से गिरते हुए सैकड़ों बाणों के शब्द से, एक ओर कर्णकटु धनुष की प्रत्यञ्चा के गुंजार से, एक ओर भीषण विजय डिण्डिम निर्घोष से कानों के समूह को बहरा बनाता हुआ, रात-दिन अत्यधिक भयभीत हुआ, निद्रा के सुख को भूलकर, विश्वास पूर्वक भोजन का भी अवसर न पाकर यथार्थ रूप में रुग्ण स्थिति का आचरण कर रहा हूं । राजपुत्र की मित्रता सर्वथा उद्वेग उत्पन्न करने योग्य है । विशेषकर यहाँ खरदूषणादि के छोड़ने का उत्साह मुझे बाधा पहुँचा रहा है, जो कि इस आशा वाले खरदूषणादि के विघ्न की आशङ्का कर शीघ्र ही वरुण के मानभङ्ग का परिहार करते हुए विद्याबल से धीरे-धीरे ही मित्र युद्ध कर रहे हैं । अन्यथा कौन प्रतिपक्षी युद्ध के अग्रभाग में मित्र के सामने मुहुर्त भर भी व्यवहार करने में समर्थ हो सकता

है। आज इस एक दिन मुझ ब्राह्मण के ही भाग्य से दोनों पक्षों के सेनापतियों के द्वारा पारस्परिक सेना के विश्राम के लिए सौभाग्य से युद्ध कार्य रोक दिया है। इस प्रकार प्रभात से इतने समय तक चतुरङ्ग सेना के दर्शन के उत्सुक होकर अवसर प्राप्त न होने से कहीं जाकर मैंने प्रिय मित्र की सेवा नहीं की। इस समय सायंकालीन सन्ध्या के समुदाचार के लिए राजसभा से निकले हुए इस समय कहाँ है। (सामने देखकर) यह धनुष को धारण करने वाली शरावली है। तो इससे पूछता हूँ। (आकाश में) माननीया शरावलि! मित्र इस समय कहाँ है? क्या कहते हो, सन्ध्या कार्य समाप्त करके, समस्त परिजनों को निषेध करके आर्य कुमुद्वती के तीर प्रदेश पर विद्यमान है। तो वहाँ जाता हूँ। (घूमता है।)

(अनन्तर पवनंजय प्रवेश करता है)

पवनंजय – (देखकर) ओह सागर के परिसर प्रदेशों की सुख सेव्यता आश्चर्यजनक है। यहाँ पर निश्चय से –

सेना के हाथी हरिचन्दन रसों का कुरला करते हुए नदी के तीर के पास धीरे-धीरे तमाल पल्लवों के समूह को तोड़ते हुए तत्क्षण युद्ध के परिश्रम के अपहरण से सैनिकों के द्वारा सम्मानित होकर सुखकर शीतल और सुगन्धित समुद्र तट के वन के छोरों की वायु का सेवन कर रहे हैं। ॥1॥

विदूषक – ये मित्र हैं। तो इनके समीप जाता हूँ (समीप जाकर) प्रिय मित्र की जय हो!

पवनंजय – मित्र कैसे?

विदूषक – हे मित्र, जिसमें चन्द्रमा का उदय निकटवर्ती है, ऐसे आकाश के भाग की दर्शनीयता को देखो।

पवनंजय – (देखकर)

जिसका उदय समीपवर्ती है ऐसा चन्द्रमा की किरणों का समूह हठात् अन्धकार के मध्य प्रविष्ट होता हुआ, इस समय दर्शनीय है। जिसके अन्दर जल है, मरकतमणि की शिला के समान श्यामल जलराशि वाली मन्दाकिनी के समान चन्द्रकान्त मणि के द्रव का गौर प्रवाह है। ॥2॥

विदूषक – हे मित्र देखिए, यह विरही जनों के हृदय में स्नान करने से लगे हुए रुधिर से लाल कामदेव के भाले के समान, उत्कण्ठित कामिनीजन के हरिचन्दन से लिप्त ललाटपट्ट के समान, चक्रवाकमिथुन के विरही मयूर के प्रथम शिखोदगम के समान, चकोरों के ज्योत्स्ना रूप आसव के पान हेतु रत्नमयी प्याले के समान पूर्व दिशा रूपी वधू के मुख पर लगाए हुए तिलक के समान इस समय अर्द्धोदित चन्द्रमा विशेष रूप से शोभित हो रहा है।

पवनंजय – (देखकर)

मारे गए शत्रु हाथी के मस्तक पर सरुधिर गुलाबी मस्तिष्क से युक्त बड़े हाथी के दन्ताग्र के समान चन्द्रमा का बिम्ब उदित हो रहा है। ॥3॥

विदूषक – हे मित्र, हम दोनों एक साथ ही कुमुद्वती के तीर प्रदेशों में चाँदनी का सेवन करें।

पवनंजय - जैसा आपने कहा ।
(दोनों वैसा ही करते हैं ।)

पवनंजय - और इधर
शीघ्र ही पश्चिम समुद्र से चन्द्रमा की चंचल तरंग रूप हाथों से प्रचुर रूप से गिरते हुए यहाँ पर बिखरे हुए तारागण आकाश में लाए गए अर्घ्य रूप मोतियों की लक्ष्मी को धारण कर रहे हैं । ।।4।।

विदूषक - (सामने की ओर निर्देश कर) मित्र यहाँ सहचर को खोजती हुई अकेली चकवी को देखिए ।

पवनंजय - (देखकर) अरे बड़े कष्ट की बात है । सहचर को खोजती हुई बेचारी शोचनीय दशा का अनुभव कर रही है । देखिए -
विरह से दु:खी यह चकवी बार-बार चन्द्रमा से द्वेष करती है, बार-बार कुमुदवन में प्रवेश करती है, बार-बार चुप रहती है, बार-बार अत्यधिक करुण क्रन्दन करती है, बार-बार दिशाओं की ओर देखती है, बार-बार रेत पर गिरती है, बार-बार मोहित होती है । ।।5।।
(मन ही मन) अत: कष्ट है । मेरे प्रवास से अंजना भी प्राय: इस प्रकार की दशा पर पहुँचती होगी । (निश्चल खड़ा रहता है)

विदूषक - क्या बात है, मित्र कैसे घिरे हुए से बैठे हैं । मित्र चुप क्यों बैठे हो (हाथ खींचकर) हे मित्र ! चुप क्यों बैठे हो ।

पवनंजय - (गला भरे हुए स्वर में)
काम के एक मात्र सारथी चन्द्रमा के चाँदनी बिखेर कर उदित होने पर कामिनी कौन अत्यधिक दु:सह विरह को सहती होगी । ।।6।।
विदूषक (मन ही मन) - प्रिय मित्र उत्कण्ठित से कैसे हैं ?

पवनंजय - संग्रामों में प्रतिदिन दुगने उत्साह से मेरे द्वारा बिताया गया यह दीर्घकाल भी चला गया, इसकी मैं पराधीनता के कारण परवाह नहीं की । कष्ट की बात है, इस समय स्वप्न में भी असंभव उस असह्य विरह व्यथा को सहन करने में महेन्द्र राजा की पुत्री कैसे समर्थ होगी ।

विदूषक - हे मित्र ! तुम इस समय अत्यन्त रूप से दु:खी क्यों दिखाई दे रहे हो ?

पवनंजय - (कामावस्था का अभिनय करता हुआ)
इधर से इलायची की लता को कँपाता हुआ मलयपवन धीरे-धीरे चल रहा है। इधर चन्द्रमा कुमुद के समान स्वच्छ चाँदनी के समूह को बर्षा रहा है । इधर कामदेव अत्यधिक रूप से छोड़े हुए बाणों से बींध रहा है । हे मित्र ! तुम नि:शंक होकर कहो, मुझे किस प्रकार सान्त्वना दे रहे हो । ।।8।।

विदूषक - क्या बात है ? इस समय इसका कामोन्माद प्रवृत्त हो रहा है ।

पवनंजय - ओह, महान् आश्चर्य है ।
इसके बाण पुष्पों के हैं और अत्यधिक निर्बल वे पाँच की संख्या को प्राप्त है, स्वयं यह अनङ्ग होकर कैसे जगत् को जीत रहा है । ।।9।।

विदूषक - (मन ही मन) यह बहुत अधिक खिन्न हैं, अतः इनका मन बहलाता हूँ। (हाथ में लेकर) हे मित्र, जरा अन्दर आओ। राजा लोग तुम्हारी सेवा करने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं।

पवनंजय - (बिना सुने ही साँस लेकर बैठ जाता है)

विदूषक - (उपहास सहित) मेरे वचनों का ठीक पालन किया।

पवनंजय - बिना स्थान के ही क्यों प्रलाप कर रहे हो। चुपचाप बैठ जाओ।

विदूषक - क्या करूँ (बैठ जाता है)।

पवनंजय - (उत्कण्ठा के साथ)

मेरे आगमन पर जिसे कोई अनोखी उत्कंठा उत्पन्न हुई थी, गाल रूपी फलक विकसित हो गए थे, अधर और ओठ फड़कने लगे थे ऐसी मेरे विरह की खिन्नता के समूह से दुःखी उसका मुखकमल कब देखूँगी। ॥10॥

विदूषक - यह उत्कण्ठा का अवसर नहीं है।

पवनंजय - यह कार्योपदेश का अवसर नहीं है।

विदूषक - इस समय मुझे क्या करना चाहिए।

पवनंजय - मित्र, उपकरण के साथ चित्र बनाने की तख्ती ले आओ, जिससे कि इस समय चित्रगत भी प्रिया को देखें।

विदूषक - क्या उपाय है। जो आप कहें। (उठकर चल देता है)

पवनंजय - मित्र, आओ।

विदूषक - (समीप में जाकर) आज्ञा दीजिए।

पवनंजय - जिससे कँप उत्पन्न हो रहा है, जो चाँदनी के आतप के संतप्त है, ऐसा यह हाथ कुछ लिखने में समर्थ नहीं है। ॥11॥

विदूषक - जैसा आप पसन्द करें, वह करूँ।

पवनंजय - वत्स,

कुमुद के पत्तों की यहाँ पर शय्या बना दो, शीतल स्पर्श वाले केले के पत्तों से मलयवायु से तप्त शरीर पर हवा करो। ॥12॥ अथवा

यह चाँदनी और यह मलय पवन भी जिस प्रकार मेरे सन्ताप के लिए हुआ, कहो कुमुदों से और केले के पत्तों से वह कौन से धैर्य को प्राप्त करेगा? अतः अधिक कहना व्यर्थ है। केवल महेन्द्र पुत्री अंजना के गाढ आलिङ्गन से ही मैं सान्त्वना प्राप्त करूँगा, ऐसा मैं मानता हूँ। ॥13॥

विदूषक - ठीक है, इस समय इसे अच्छी तरह किया जा सकता है। यह तो विजयार्द्ध पर है और आप यहाँ दक्षिण भूमि में विद्यमान हैं।

पवनंजय - मित्र, हम इस समय विमान पर चढ़कर विजयार्द्ध की ओर ही चलते हैं (उठता है)

विदूषक - (उठकर) हे मित्र, जरा सुनो।

पवनंजय - धीरे से कहो।

विदूषक - यहाँ महाबली, तुम्हारे प्रतिपक्षी वरुण के स्थित रहने पर छावनी छोड़कर जा रहे हो, यह बात मेरे लिए अनुचित प्रतीत हो रही है।

पवनंजय – (कोप के साथ) ।

शीघ्र ही तीनों लोकों को भयभीत निजस्त्रियों के कण्ठग्रहण को देने वाले प्रत्यञ्चा के घोषों से आकाश में श्रोत्र मार्ग को बहिरा बनाती हुई फूलों की वर्षा हो । कान तक खींचकर छोड़े गए तीक्ष्ण सैकड़ों बाणों से दिशाओं के भाग को ढकता हुआ यह मैं आज समस्त शत्रुपक्ष को बलपूर्वक चूर्ण-चूर्ण करता हूँ । ॥14॥

विदूषक – क्या यह प्रहलाद के पुत्र के लिए असंभव है । फिर भी यह राजधर्म नहीं है ।

पवनंजय – क्या संग्राम राजधर्म नहीं है ।

विदूषक – नहीं, जल्दी मत करो । इस समय दोनों सेनाओं ने एक दिन का युद्ध रोका हुआ है ।

पवनंजय – मित्र, तुमने मुझे ठीक याद दिलाया । ओह शत्रु समूह का जीवन अवशिष्ट है ।

विदूषक – इस प्रकार यहाँ आपका जाना सर्वथा उचित नहीं है ।

पवनंजय – यदि यह बात है तो इसी समय जाकर हम लोग सूर्य के उगने से पूर्व ही लौट आयेंगे ।

विदूषक – यह भी उचित नहीं है । इस प्रकार शत्रु को जीतने के लिए गए हुए तुम कार्य समाप्त किए बिना नगर में प्रवेश करोगे तो महाराज और प्रजायें क्या कहेगी ।

पवनंजय – मित्र, तुमने ठीक कहा । जिसका आगमन विदित नहीं है, ऐसे हम लोग अंजना के समीपवर्ती उद्यान में उतर जायेंगे ।

विदूषक – यहाँ ठहरते हुए सेनापति मुद्‌गर क्या तुम्हें नहीं खोजेंगे ?

पवनंजय – तो मुद्‌गर से जाने गए ही जायेंगे ।

विदूषक – इसके विषय में उससे कहना ठीक नहीं हैं ।

पवनंजय – बात यही है । किसी बहाने से जाना चाहिए । अरे यहाँ पर कौन है ? (प्रवेश कर)

शरावती – कुमार आज्ञा दें ।

पवनंजय – शरावति, मेरे वचनों के अनुसार सेनापति मुद्‌गर से कहो कि प्रातःकाल से चार प्रकार सेना की सामग्री के दर्शन के दबाव से मेरा मन इस समय नींद को चाह रहा है । तो इस समय आप नियोजित सांग्रामिकों को सावधानी पूर्वक तैयार करना ।

शरावती – जो कुमार की आज्ञा । (चल पड़ती है)

पवनंजय – शरावती, जरा आओ ।

शरावती – (समीप में जाकर) आज्ञा दो ।

पवनंजय – मैं इसी कुमुद्वती-के तीर प्रदेश पर रेशमी वस्त्र से बने पटमण्डप में शयन करता हुआ रात्रि बिताता हूँ । तुम भी प्रतिहारवर्ग के साथ समस्त परिजनों को रोककर प्रवेशद्वार को बन्द कर दो ।

शरावती - जो कुमार की आज्ञा (निकल जाती है)

पवनंजय - मित्र, अधिक विलम्ब क्यों कर रहे हो (विद्या की भावना कर) यह विमान आ गया। तो हम दोनों इस पर आरोहण करें।

विदूषक - जो मित्र की आज्ञा।
(दोनों चढ़कर विमान यान को देखते हैं)

पवनंजय - (विमान के वेग को देखकर)
कुटुम्ब का बच्चा यह चन्द्रमा आकाशजल रूप समुद्र के चाँदनी रूप जल में शीघ्र दौड़ता हुआ विमान रूपी जहाज पीछे दौड़ता हुआ सा प्रतीत हो रहा है ॥१५॥

विदूषक - तुम निश्चित रूप से पवनवेग हो। (सामने की ओर निर्देशकर) हे मित्र, यह रजतगिरि चन्द्रमा केवल रूप सादृश्य से जल सहित मेघ का आचरण करता हुआ श्रेणि रूप वन पंक्ति में विलीन दिखाई पड़ रहा है।

पवनंजय - क्या चन्द्रमा गिर रहा है अथवा रजतगिरि पर ही चढ़ रहा है, यह विशद चाँदनी अब इस प्रकार मेरे मन में शंका उत्पन्न कर रही है ॥१६॥

विदूषक - हम लोग रजतगिरि को प्राप्त हो चुके हैं। यह विमान यहाँ स्थित है, तो उतरो।

पवनंजय - जैसा आप कहें (उतरने का अभिनय करता है)

विदूषक - मित्र, यह उनकी चौशाला के मध्य में कौमुदीप्रासाद है, तो इसके भवनतले उतरें।

पवनंजय - जैसा आप कहें।
(दोनों उतरते हैं)
(अनन्तर विरहोत्कण्ठिता अंजना और उसके शीतल उपचार में व्यग्र वसन्तमाला प्रवेश करती है।)

अंजना - (कामावस्था का नाट्य करती हुई, चांदनी के स्पर्श का अभिनय कर) - सखि, इस चाँदनी को केले के पत्ते से रोको।

वसन्तमाला - हूँ, यहाँ पर क्या करें। यह दिन में भी चाँदनी के अङ्कुर की आशङ्का करती हुई मृणालवलय से परिष्कृत होकर काँपती है। चन्द्रमा के बिम्ब की शंका कर मणिदर्पण नहीं देखती है। मलयवायु की आशंका करती हुई केले के पत्ते की वायु का निवारण करती है। कामदेव के सैकड़ों बाणों की शंका करती हुई फूलों की शय्या को नहीं सहती है। चन्दन के द्रव की शंका करती हुई चन्द्रकान्तमणि के प्रवाह का परिहार करती है।
(दोनों सुनते हैं)

पवनंजय - निश्चय रूप से इधर से वसन्तमाला बोल रही है।

विदूषक - केवल वसन्तमाला ही नहीं है। तुम्हारे विरह से उत्कण्ठित वह भी इसी चन्द्रकान्त प्रासाद के द्वार पर विद्यमान है।

अंजना - (बांयी आँख फड़कने की सूचना देकर) ओह यह बाईं आँख फड़क रही है।

वसन्तमाला - राजकुमारी, शीघ्र ही पति को देखोगी ।

अंजना - संताप का अभिनय करती हुई । कितने काल तक मैं इस शिशिरोपचार के दु:ख को सहूँगी ।

पवनंजय - (सुनकर और देखकर, मन ही मन) क्या इस समय प्रिया दूसरी ही अवस्था में विद्यमान है । यह निश्चित रूप से -

दुर्बल शरीर वाली, शिथिल गाँठ वाली, आँसुओं से मैले नेत्र वाली, श्वास युक्त, केशपाश खुले हुई, विरह में संसर्ग युक्त सी हो गई है । ॥16॥

अंजना - हाय आर्यपुत्र, मुझे कब दर्शन सुख दोगे । (इस प्रकार मोहित होता है)

वसन्तमाला - (घबराहट के साथ) राजकुमारी धैर्यधारण कीजिए, धैर्य धारण कीजिए ।

पवनंजय - (घबराहट के साथ समीप में जाकर) प्रिये, धैर्य धारण करो ।

विदूषक - (घबराहट के साथ समीप में जाकर) आप धैर्य धारण करें ।

वसन्तमाला - (घबराहट के साथ) स्वामी कैसे, स्वामी की जय हो ।

अंजना - (आश्वस्त होकर और साँस लेती हुई देखकर) आर्यपुत्र कैसे ?

(प्रस्थान करना चाहती है)

पवनंजय - हे दुर्बल अङ्गों वाली । अत्यन्त कष्ट देने से बस करो, वहीं पर धीरे से बैठ जाओ । साक्षात् कटाक्ष से साध्य दासजन के प्रति यह कौन सा व्यवहार है । ॥18॥

(हाथ पकड़कर बैठ जाता है)

विदूषक - आपका कल्याण हो । पिता के सदृश पुत्र प्राप्त करो ।

अंजना - (विस्मक पूर्वक) सखि वसन्तमाला, क्या यह स्वप्न है या परमार्थ है ।

वसन्तमाला - अत्यन्त सरल, पति से पूछ ।

पवनंजय - पहले स्वप्न में अनेक बार आए हुए मेरे द्वारा ठगी गई । पुन: मेरे आ जाने पर यह मुग्धा आज विश्वास नहीं कर रही है । ॥19॥

वसन्तमाला । हम दोनों को यहाँ आए किसी ने देखा नहीं है । तो इस समय जैसे कोई आगमन को न जाने, वैसा प्रयत्न करना चाहिए ।

वसन्तमाला - जो स्वामी की आज्ञा । आर्य प्रहसित, आओ द्वार की रक्षा करें ।

विदूषक - जो आप कहती हैं ।

(दोनों चले जाते हैं)

पवनंजय - (अंजना को देखकर)

कमलनाल से अलंकृत, घने चन्दन के द्रव से लिप्त, पीले मुखवाली वह यह चाँदनी की अधिष्ठात्री देवी है, ऐसा मैं मानता हूँ । ॥20॥

प्रिये इस समय भी विरह शमन का कष्ट उठाने से क्या ? तो इसी समीपवर्ती मणिचन्द्रकान्त वासगृह में प्रवेश करें । (हाथ पकड़कर) प्रिये, इधर से, इधर से ।

श्री हस्तिमल्ल विरचित अंजना पवनंजय नामक

नाटक में तृतीय अङ्क

समाप्त

चतुर्थो अङ्क

(अनन्तर वसन्तमाला प्रवेश करती है)

वसन्तमाला - यहाँ कभी आए हुए स्वामी को चार माह हो गए। इस समय राजकुमारी का मानों दोहद है। उसके नील कमल के पत्ते के समान दोनों स्तनों के अग्रभाग नीले पड़ गए हैं। दोनों गाल इलायची के फल के समान पीले पड़ गए हैं। उदर में रोमपंक्ति अंजन की रेखा के समान स्पष्ट रूप से नीली हो गई है। अतः इस सुन्दर वृत्तान्त को महारानी केतुमती से निवेदन करती हूँ। (परिक्रमा देकर, सामने देखकर) यह कौन इधर आ रही है। क्या बात है, महारानी केतुमती की सेविका युक्तिमती है।

(अनन्तर युक्तिमती प्रवेश करती है)

युक्तिमती - महारानी केतुमती ने आज्ञा दी है कि वधू अंजना अस्वस्थ है, तो उसकी कुशल पूछकर आओ। तो स्वामिनी अंजना के चतुःशाल (चार खण्ड वाले भवन) की ओर जाती हूँ।

(घूमती है)

वसन्तमाला - यह प्रिय सखी युक्तिमती किसी अन्य कार्य में व्यग्र हृदय वाली होकर मुझे बिना देखे ही जा रही है। तो इसके पीछे चुपचाप जाकर आँख बन्द कर उपहास करूँगी। (वैसा ही करती है)

युक्तिमती - (देखकर, मुस्कराहट के साथ) - और कौन मेरे ऊपर इस प्रकार विश्वास करती है। प्रिय सखि वसन्तमाला, तुम पहचान ली गई हो।

वसन्तमाला - (हाथ छोड़े हुए, हास्यपूर्वक) सखि, तुम निश्चित रूप से युक्तिमती हो। सखि, इस समय तुम कहाँ जा रही थी ?

युक्तिमती - सखि ! अंजना कुछ अस्वस्थ है, अतः महारानी केतुमती की आज्ञा से कुशलता पूछने के लिए जा रही हूँ।

वसन्तमाला - भोली भाली, वह अस्वस्था नहीं है। वह तो दोहद है।

वसन्तमाला - सखि, जरा सुनो। एक बार अर्द्धरात्रि में प्रहसित के साथ स्वामी आकर चले गए।

युक्तिमती - हम लोगों को कैसे ज्ञात नहीं हुआ।

वसन्तमाला - वे युद्ध समाप्त हुए बिना नगर में प्रवेश हुआ हूं, अतः वीरजनोचित लज्जा से आने को न प्रकट कर रात बिताकर प्रातःकाल ही चले गए।

युक्तिमती - सखि, ठीक है। तुम कहाँ चल पड़ी थी।

वसन्तमाला - इस सुन्दर वृत्तान्त को महारानी से निवेदन करने के लिए।

युक्तिमती - सखि, स्वामिनी से निवेदन करना युक्त ही है। फिर भी मेरा हृदय कुछ व्याकुल सा है।

वसन्तमाला - क्यों ?

युक्तिमती - महारानी केतुमती स्वामिनी अंजना के अप्रतिम चरित्र को जानती ही है।

तथापि विशेषतः स्त्रियों के अभिजात्य की रक्षा करने में महारानी एकान्त (अत्यन्त) सावधान है। अतः इस वृतान्त को सुनकर (न जाने) क्या करेंगी?

वसन्तमाला - सखि, इस समय व्यर्थ में ही क्यों दुःखी हो रही हो। चार मास बाद युद्ध समाप्त होने पर आ जाऊँगा, ऐसा कहकर तब स्वामी चले गए थे। चार मास बीत गए। अतः कल या परसों स्वयं स्वामी यहाँ आ जायेंगें।

युक्तिमती - यह बात भी मानों दूर हो गई।

वसन्तमाला - कैसे ?

युक्तिमती - वत्स, बिना बाधा के इस समय वरुण का मानभङ्ग नहीं कर सकते। क्योंकि खरदूषणादिका छुड़ाना अवरुद्ध नहीं होगा, उसी प्रकार विद्याबल से युद्ध में व्यवहार करना चाहिए। ऐसा मानकर महाराज सेनापति मुद्‌गर को लेख भेजेंगे। इस प्रकार कुमार देर करेंगे।

वसन्तमाला - फिर भी क्या चन्द्रलेखा भी विष उगलती है अथवा क्या चन्दनलता अग्नि उगलती है। अतः स्वामिनी केतुमती के विषय में अन्यथा शङ्का मत करो।

युक्तिमती - तो आप जाँय। मैं भी स्वामिनी अंजना के दोहला उत्पन्न होने से रमणीय रूप को देखकर आँखों के फल का अनुभव करूँगी।

वसन्तमाला - सखि, वैसा ही हो। (चली जाती है)।

युक्तिमती - (घूमती हुई, आकाश में लक्ष्य बाँधकर) स्वामिनी केतुमती, के प्रति तुम्हारे असाधारण प्रेम, चरित्र और सत्यपालन को मैं जानती ही हूँ। फिर भी केवल अपने दुःख के कारण निवेदन कर रही हूँ। दूसरे की निन्दा की शङ्का करती हुई मेरी निजी उदारता अनुचित न हो जाय।

(नेपथ्य में)

माननीया युक्तिमती-1

युक्तिमती - मुझे कौन बुला रहा है। (पीछे देखकर) कञ्चुकी लब्धभूति कैसे ?

(प्रवेश कर)

कञ्चुकी - माननीया उक्तिमती।

युक्तिमती - (समीप में जाकर) आर्य मुझे क्यों बुला रहे है ?

कञ्चुकी - अब आप वहाँ न जाँय। महारानी की ही समीपवर्तिनी होओ।

युक्तिमती - (शङ्का सहित) आर्य, महारानी की आज्ञा से स्वामिनी अंजना की, जो इस समय कुछ अस्वस्थ हैं, कुशल पूछने के लिए मैं चली थी।

कञ्चुकी - स्वयं महारानी तुम्हें बुला रही हैं।

युक्तिमती - (विषाद सहित, मन ही मन) हूँ जैसा मैंने सोचा था, वैसा ही हो गया (प्रकट में) आर्य, यदि ऐसा है तो महारानी के पास जाऊँगी। (चली जाती है)

कञ्चुकी - (परिक्रमा देता हुआ) अरे, बड़े खेद की बात है।

अपने अभिजात्य के अधीन निर्दोष चरित्र जानकर भी कुलस्त्रियाँ प्रायः थोड़ी सी भी निन्दा से डरती हैं। ॥n॥

तो इस समय शाखानगर की ओर ही चलता हूँ। (घूमकर और अपने आपको देखकर)

अरे, अविशद वाणी को कठिनाई पूर्वक बाँधकर उपहास को प्राप्त हुआ कुकवि के समान पद-पद पर पुनः-पुनः स्खलित हो रहा हूँ। निराबाध मन वाला ही मैं मृदु कदम रखता हुआ वृद्धावस्था पाकर भी प्रौढ़ कवि की समता को प्राप्त हो गया हूँ। ॥2॥

अथवा – प्रत्येक नए आम से निकलते हुए कोमल पत्ते को चाहने वाली बाला सुकुमार हाथ के अग्रभाग से कर्णमूल में बिखरे हुए पत्ते से क्या बना रही है ? कहीं-कहीं पर वृद्धावस्था भी निन्दा के योग्य हो गई। ॥3॥

(सामने देखकर) यह गोपुर है। इससे निकलकर शाखानगर में प्रवेश करता हूँ। (घूमकर) मैं शाखानगर में प्रविष्ट हुआ हूँ। (सामने देखकर) यह क्रूर विद्याधर भैरव का सेवक हिन्तालक प्रकट रूप से विकसित नीलकमल के ढेर के बन्धन से युक्त अग्रहस्त वाला शीघ्र ही इधर से दौड़ रहा है। तो मैं इसे बुलाता हूँ। रे-रे हिन्तालक।

(यथानिर्दिष्ट चेट, मदिरा लेकर प्रवेश कर)

चेट – (देखकर) कैसे आर्य लब्धभूति स्वयं आकर मुझे बुला रहे हैं। (समीप में जाकर) स्वामी, यह मैं नमस्कार करता हूँ (प्रणाम करता है)।

कञ्चुकी – हिन्ताल, मेरे वचनों के अनुसार क्रूर को यहीं बुलाओ।

चेट – स्वामी, उसको आप जैसों के बोलने का यह अवसर नहीं है।

कञ्चुकी – क्या ?

चेट – (हाथ से निर्देश कर) भट्टारक, यह चन्द्रमा के बिम्ब के सदृश भैरवी चक्र के कपाल से युक्त बायें अग्रहस्त वाला, घर्घरिका के घर्घर निर्घोष से मुखर चरण युगल वाला, डमरु को पीटने में चञ्चल दक्षिण हाथ वाला, स्कन्ध प्रदेश पर त्रिशूलदण्ड, धारण किए हुए, लाल चन्दन के तिलक से शोभित ललाटपट्ट वाला, जपा कुसुम के समान भयंकर लाल नेत्रों वाला विद्याधर भैरव भैरव के समान विद्यमान है। और

यह क्रूर स्वामी सुदुर्लभ, सुगन्धित मदिरा को पीकर नाचता है, गाता है, घूमता है, स्खलित होता है और अकारण ही हँसता है ॥4॥

कञ्चुकी – (देखकर) कैसे मदोन्मोह उमड़ा हुआ है : क्योंकि

कुछ अन्तरङ्ग की चिन्ता से झुके हुए मुख वाले बैठे हुए हैं। पुनः मुहूर्त भर के लिए वो कुछ वस्तु ढूँढते हुए विहार कर रहे हैं। परस्पर में हाथ पीट कर अकस्मात् आश्चर्यान्वित हो हँसते हैं। हाथी के समान मदमत्त यह मदिरा के जलकणों को छोड़ रहा है। ॥5॥

(घृणा पूर्वक) दूसरे के भोजन के प्रति आसक्ति निश्चित रूप से उद्वेग उत्पन्न करने वाली होती है, जो कि मुझे भी इन निकृष्ट चेष्टा वालों के साथ बोलना पड़ता है। हे हिन्तालक यहाँ पर क्या करना चाहिए।

चेट – भट्टारक, जब तक इसके मद की समाप्ति नहीं हो जाती, तब तक आपको इस पुराने उद्यान में प्रतीक्षा करना चाहिए।

कञ्चुकी – वैसा ही करते हैं। (चला जाता है)

अनन्तर यथानिर्दिष्ट क्रूर विद्याधर भैरव प्रवेश करता है।

क्रूर – (मद का अभिनय करता हुआ, आदर पूर्वक) ।
जिसके नाम को सुनकर सुर और असुर काँपते है, वही क्रूर मैं विद्याधर भैरव हूँ ।।6।।

और भी – इतने लोक में मेरे लिए मन्त्र, यन्त्र अथवा तन्त्र से कोई कार्य दुष्कर नहीं है। मेरे सदृश अन्य कौन पुरुष है । ।।7।।

चेट – (समीप में जाकर) स्वामिन्, यह मैं प्रणाम करता हूं ।

क्रूर – प्रिय शिष्य, जीवनपर्यन्त मेरी सेवा करते रहो ।

चेट – यह दास अनुगृहीत हुआ । यह नए कमल हैं ।

क्रूर – अरे हिन्तालक – इतने समय तक तुमने क्यों विलम्ब किया ।

चेष्ट – स्वामिन्, आर्य लब्धभूति पुराने उद्यान में इस समय तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे है । उसे देखकर देर कर दी ।

क्रूर – इस समय चुप क्यों बैठे हो । नील कमलों से घड़े के आसव को सुवासित करो ।

चेट – हँसी रोकते हुए, मन ही मन । भली प्रकार कथाओं का अवसर मुझे विदित हो गया । (प्रकट में) जो स्वामी की आज्ञा । (यथोक्त करता है) ।

क्रूर – अरे हिन्तालक, जरा ३. ।
त्रिशूलक नृत्य को यथेष्ट रूप से उल्लसित करते हुए, मधुरा, ध्रुवा विधा को गाते हुए इस समय विहार कर रहा हूँ । ।।8।।
(दोनों घूमते हैं)

क्रूर – (हर्ष पूर्वक गाता है) ।
भले प्रकार प्रसन्न (मदिरा को) सुखपूर्वक पीते हुए, पद–पद पर विषम रूप में लड़खड़ाते हुए अत्यधिक मत्त, महान् प्रभाव वाला विद्याधर भैरव सदा विजयशील हो । ।।9।।

और – सरस कमल जिस पर रखे हुए हैं, ऐसी मदिरा को पीकर, मद होने पर भी शुभ में विहार कर रहा हूँ, चलता हूँ, स्खलित होता हूँ, अरे मैं क्रूर, क्रूर क्रूर हूँ । ।।10।।
(लड़खड़ाते हुए)
अरे पृथ्वी कैसे चल रही है
(हास पूर्वक)
यह बात विदित हो रही है कि अत्यधिक मद के समूह से भरे हुए मुझे धारण करने में असमर्थ होकर सचमुच पृथ्वी चल रही है । ।।11।।
अरे हिन्तालक, इस पीने के प्याले में घड़े से मदिरा उड़ेल दो अथवा उसी कुम्भ से आकण्ठ पीता हूँ । (वैसा कर) अरे यह मदिरा विशेष रूप से उत्तम रस से युक्त है । (मद का अभिनय करते हुए) मेरे बिना लोक कैसे एक महापुरुष सामान्य मनुष्य की प्रशंसा कर रहा है । तो मैं जाग्रत करता हूँ । सुनो–सुनो, जो सर्वथा सज्जन हैं, वे मेरे ही दोनों चरणों की भली प्रकार सेवा करें । जो लीला पूर्वक हाला पी पीकर खेल–खेल में लड़खड़ाते हुए शरीर से चलता हुआ विहार कर रहा है । ।।12।।

चेट - (देखकर) स्वामी के मद का समूह कैसे भूमि का अतिक्रमण करता हुआ आरुढ़ है । क्योंकि -

इस समय मदिरा का कुरला कर विद्याधर भैरव स्वयं अपने समस्त शरीर में बार-बार पृथक-पृथक शीतल छटा को थूक रहा है । ॥13॥

क्रूर - (चारों ओर देखकर) अरे मदिरा का समुद्र चारों ओर से भी भाग रहा है।

चेट - कैसे, मदिरामय भाव होने से इसे चारों ओर सुरासमुद्र प्रतिभासित हो रहा है ।

क्रूर - (तरंग में गिरने का अभिनय करता है) क्या बात है, ये तरंगें तीर के ऊपर हैं । अरे हिन्तालक, आओ, दोनों तैरें [तैरने का अभिनय करते हुए]

सैकड़ों लहरों के चलने से सहसा सुरासमुद्र में मग्न हूँ । अरे अरे मैं क्या करूँगा, क्या तैरूँगा अथवा पीऊँगा ? ॥14॥

(थकान का अभिनय करते हुए) अरे इस समय मैं बहुत थक गया हूँ । अतः इस परिश्रम को इस मन्त्र के जाप से शमन करूँगा ।

शुण्डा, सुरा, प्रसन्ना, कल्या, कादम्बरी, मधु, शीधु, मदिरा, मद्य, मधुरा, भैरवी, वारुणी, हाल । ॥15॥

(पुनः पुनः पढ़ता है)

चेट - क्या इस समय स्वामी थक गए हैं ।

क्रूर - अरे इस समय कहाँ विश्राम करूँगा ।

चेट - (मन ही मन) स्वामी का मद मानों थक गया है । अतः मैं निवेदन करूँगा।

(प्रकट में) स्वामिन्, आर्य लब्धभूति पुराने उद्यान में कौन से समय स्वामी की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

क्रूर - अरे हिन्तालक, इतने समय तक तमने क्यों नहीं कहा ?

चेट - स्वामी, मैंने पहले कहा था । स्वामी ने मद के समूह से परवश होकर सुना नहीं ।

क्रूर - हूँ, मेरा प्रमाद । तो वहाँ चलेंगे ।

चेट - इधर से, इधर से (दोनों घूमते हैं)

चेट - स्वामी, यह पुराना उद्यान है ।

(दोनों प्रवेश करते हैं)

चेट - (अङ्गुली से निर्देश कर) - स्वामिन् ! ये आर्य लब्धभूति तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

(प्रवेश कर)

कञ्चुकी - भैरव देर कर रहे हैं । (देखकर) नृशंस समीप में ही कैसे है ? जो यह अत्यन्त भयानक शरीर को धारण करता हुआ क्रूर यह स्वयं शरीर धारिणी आरभटी वृत्ति के समान आ रहा है । ॥16॥

क्रूर - (समीप में जाकर) आर्य, मुझे क्या करना है ।

कञ्चुकी - शङ्का से युक्त होकर चेट को देखता है ।

क्रूर - क्या राज रहस्य है ।

कञ्चुकी - और क्या ?

क्रूर - हिन्तालक, तुम इस पुराने उद्यान के बाहर मेरी प्रतीक्षा करो ।

चेट - जो स्वामी की आज्ञा ।

(चला जाता है)

क्रूर - इस समय आर्य विश्वस्त होकर कहें ।

कञ्चुकी - देवी केतुमती तुम्हें आज्ञा देती हैं ।

क्रूर - चिरकाल के बाद देवी केतुमती के द्वारा स्मरण किया गया हूँ ।

कञ्चुकी - (विषादपूर्वक) अरे बड़े खेद की बात है । मेरे द्वारा भी यह सन्देश दिया जा रहा है ।

क्रूर - जो कुछ भी हो । स्वामिनी के सन्देशों का उल्लंघन नहीं किया जा सकता।

कञ्चुकी - (आँखों में आँसू भरकर कान में) बात ऐसी है ।

क्रूर - (विषादपूर्वक दोनों कान बन्द कर) आः, क्या करूँ ?

(क्रूर निकल जाता है)

कञ्चुकी - क्या बात है, स्वभाव से निठुर इसके लिए भी यह सुनना कठिन हो गया। यहाँ पर ठहरने से क्या । दुरात्मा क्रूर निकल गया है । तो जब तक नगरी में ही प्रवेश करता हूँ (परिक्रमा देता हुआ) सौभाग्य से दुश्चरित्र लोगों के सम्पर्क से छूट गया हूँ ।

यह बात सोचने की है कि इस समय समस्त जगत के लिए प्राय: पुण्य से भी अधिक पाप अत्यधिक प्रिय हो रहा है । अतत्त्व श्रद्धान रूपी व्यसन के पराधीन, अविवेक के स्थान रूप बुद्धि वाले लोगों के लिए इस प्रकार का आमोद-प्रमोद होवे । ॥17॥

अधिक कहने से क्या - अरे-अरे, दुश्चरित्र में लगे हुए मन वाले सब लोग सुनो । तुम जड़ों के द्वारा व्यर्थ ही यह महान् काल क्यों बिताया जा रहा है । तो परिपाक में विरस दुश्चेष्टाओं से शीघ्र ही अलग होकर पुरुषार्थ के साधन रूप जिनेन्द्र भगवान् के पथ में व्यवहार करना चाहिए । ॥18॥

(घूमता है)

हा, हा, मैं मन्द भाग्यवाली मारी गई हूँ । क्या यह भी मुझे देखना पड़ रहा है । सभी देवताओं, तुम सब शरण हो । मेरी प्रिय सखी के स्वामी पवनंजय, अपनी पत्नी की रक्षा करो । हाय आर्य प्रहसित, तुम अपने प्रिय मित्र की पत्नी को देखो । हाय महाराज प्रतिसूर्य, इस प्रकार की भानजी की रक्षा करो। हा महाराज महेन्द्र, तुम्हारी पुत्री यह भी अनुभव कर रही है । हा कुमार अरिन्दम, हा प्रसन्न कीर्ति, तुम दोनों अपनी लाड़ली इस प्रकार की अवस्था वाली छोटी बहिन को देखो ।

कञ्चुकी - (सुनकर, विषादपूर्वक दोनों कान बन्द कर) पाप शान्त हो । अरे बड़ा कष्ट है । यह बेचारी वसन्तमाला का करुणापूर्ण विलाप है । दुष्ट क्रूर की क्रूरता फलित हुई । तो यहाँ से हम सब (घूमता हुआ) ओह, दिन ढल गया है। क्योंकि दुष्ट भाग्य ने इस समय परस्पर प्रेम की डोरी में बँधे हुए कुछ विवश

इस चक्रवाक के जोड़े को एक बार में ही अलग कर दिया । ॥19॥

(चला जाता है)

इस प्रकार श्री हस्तिमल्ल विरचित अंजना पवनंजय नामक नाटक में चतुर्थ अङ्क समाप्त हुआ ।

पञ्चमों अङ्क

(अनन्तर सेनापति प्रवेश करता है)

सेनापति – ओह, पवनंजय की पराक्रमशीलता [illegible] है ।
सब जगह जिसका निवारण नहीं किया जा सकता, ऐसे बहुत बड़े शौर्य की अवस्था प्राय: प्राप्त की है । जिसके सेवकों में गणना मात्र से आदर प्राप्त किया उत्कट साहस वाला योद्धा संग्राम रूपी रङ्गस्थल के आँगन में तलवार रूपी लता के नृत्योपदेश का उत्सुक होकर अपनी भुजा का साहाय्य करता है । ॥1॥

कुमार अपने यश रूप राशि से शुभ दन्त रूप दो अर्गलाओं से दोनों ओर से विशद झरने की फुहार जिससे झर रही हो, ऐसे नीलगिरि पर्वत थे, समस्त मद का समूह जिसमें एकत्रित हो गया था, ऐसे श्रेष्ठ गन्धगज थे, अत्यन्त लाल-लाल दो नेत्रों से मानों कोपाग्नि निकाल रहे थे, मद के सुगन्ध के लोभी होने पर भी अत्यन्त डरे हुए भौरों के द्वारा मानों उनका दूर से ही परिहार कर दिया गया था, निरन्तर गिरते हुए मदजल की वर्षा से वर्षा ऋतु में काले मेघ पर चढ़कर खरदूषणादि को छुड़ाने के लिए जिन्होंने युद्ध किया हो, इस प्रकार युद्ध रूपी आँगन में उतरे थे । अनन्तर वेगपूर्वक मद से युक्त हाथियों के समूहों के बन्धन टूट गए । वीरपुरुषों के भयभीत हाथों से शस्त्र छूट गए । जिनके मन में शीघ्र भागने का निश्चय था, ऐसे परेशान सारथि रथ के सामान को बदल रहे थे । अत्यधिक टूटते हुए हजारों व्यूह क्षण भर के लिए दुर्विभेद्य हो रहे थे । अत्यधिक टूटते हुए हजारों व्यूह क्षण भर के लिए दुर्विभेद्य हो रहे थे । राजीव प्रमुख वरुण के पुत्र भय के कारण युद्ध की घटनाओं को भूलकर जहाँ कहीं शीघ्र भाग रहे थे । स्वयं भी गन्धहस्ती पर बैठे हुए कुमार ने वरुण पर आक्रमण कर दिया ।

अनन्तर स्वयं साधुवाद कहकर श्रेष्ठ देवों ने भी पुष्पवर्षा की । अञ्जलि रचकर विद्याधरों ने चारों ओर से जय, जय, इस प्रकार जयोत्सव की घोषणा की। ॥2॥

अनन्तर पराक्रम से आवर्जित वाले वरुण ने थोड़े समय मन्दमुस्कराहट के साथ खड़े होकर युद्ध का निषेध कर कुमार से कहा कि –

कुमार ! तुम्हारे बहुत सारे पराक्रम रसों से हम प्रसन्न हैं । इन विस्मयों के कारण इस समय युद्ध का उद्योग छोड़ दीजिए । और कथनों से क्या ? आपने हम सबको जीत ही लिया । तो आज से लेकर हम लोगों का दृढ़ सौहार्द हो । ॥3॥

और भी – सौभाग्य से जिन्होंने इस युद्ध के बहाने से हम लोगों की कुमार के साथ प्रेम के रस से आर्द्र होकर बद्ध हृदय वाली मैत्री सम्पादित की वे खरदूषण प्रभृति श्रेष्ठ राक्षसों से उत्साहपूर्वक तुम्हारे कीर्ति के वैभव का कथन करते हुए लङ्कापुरी को अपनी इच्छानुसार जाये । ॥4॥

इस प्रकार सुनकर कुमार ने सौहार्द शब्द से युद्ध उत्साह त्यागकर वरुण से कहा कि –

बड़े खेद की बात है कि आपके स्वाभाविक रमणीय गुणों को वास्तविक रूप में न समझकर मुग्ध हम लोग इससे पूर्व व्यर्थ ही वञ्चित हो गए । तो विश्वास के सुख से इस प्रकार बहुत देर बाद मेरा आज सुदिन हो गया। युद्ध व्यापार में संघर्ष से उत्पन्न यह अतिक्रम क्षमा करें । ॥5॥

दूसरी बात यह भी है – युद्ध वैर करने में समर्थ होता है, यह वचन ऐकान्तिक नहीं हैं । क्योंकि इस युद्ध ने ही हम दोनों में सौहार्द उत्पन्न कर दिया । ॥6॥

इस प्रकार परस्पर प्रणय रस में आकृष्ट पवनंजय और वरुण की बलवती मैत्री हो गई । मय विजयोत्सव निवृत्त हो गया, कुमार कल ही आयेंगे, इस प्रकार महाराज से निवदेन करने के लिए मैंने कल ही लेख जिनके हाथ में हैं, ऐसे दूत भेजें हैं । आज वरुण राजीव प्रमुख सौ पुत्रों के साथ स्वयं ही आकर – पश्चिम समुद्र से उत्पन्न बहुमूल्य रत्न उपहार में देकर यथोचित सुखकर बातचीत के प्रसङ्ग से थोड़ी देर ठहरकर कुमार से पूछकर चले गए। खर दूषण प्रभृति श्रेष्ठ निशाचरों को कुमार ने समुचित सत्कार पूर्वक लङ्कापुरी को भेज दिया । कुमार ने आज्ञा दी है कि विजयार्द्ध पर ही जाने के लिए तैयार हो जाना चाहिए । मैंने कुमार की आज्ञा मान ली है । इस समय – जिन्होंने भली प्रकार देखा है, ऐसे नेत्रों को सुलभ उन-उन विशेषों से सदा लुभाने वाले सस्पृह समुद्रतीरवर्ती वनों से पूछकर समस्त वियोग के खेद को नाश करने के इच्छुक ये विद्याधर कान्ता के संगम को शीघ्रता युक्त मन से यानों पर चढ़ रहे हैं । ॥7॥

तो इस समय हम लोग भी शेष कर्त्तव्य को पूरा करेंगे (चला जाता है)

शुद्ध विष्कम्भ

(अनन्तर पवनंजय और विदूषक प्रवेश करते हैं)

मैंने वरुण के साथ दृढ़तर मैत्री कर ली, खरदूषणादि श्रेष्ठ निशाचरों को छोड़ दिया, दशमुख (रावण) का मानभङ्ग रोक दिया और पिताजी की आज्ञा (स्वीकार) कर ली । ॥8॥

तो इस समय मन अंजना को देखने के लिए उत्कण्ठित है । रथ लाओ।

(रथ के साथ प्रवेश कर)

सूत – आयुष्मान विजयी होइए ।

पवनंजय – सारथी, रथ लगाओ ।

सूत - आयुष्मान् की जो आज्ञा (यथोक्त करता है।)

पवनंजय - मित्र, आओ। आरोहण करें।

विदूषक - जो आप आज्ञा दें।

(दोनों आरोहण करते हैं।)

पवनंजय - सारथी, घोड़ों को आकाश मार्ग से हाँको।

सूत - जैसी आयुष्मान् आज्ञा दें। (वैसा करके) आयुष्मन्, रथ मेघ के मार्ग पर आरूढ़ है। यहाँ पर निश्चित रूप से -

आकाश रूपी आँगन के मध्य में विद्यमान आपसे अधिष्ठित यह रथ इस समय साक्षात् सूर्य के मार्ग पर आरुढ़ है ॥9॥

पवनंजय - सारथी, शीघ्र ही घोड़ों को हाँको।

सूत - जैसा आयुष्मान् ने कहा (वैसा करके, रथ के वेग का अभिनय कर) आयुष्मान्, देखिए।

इस समय स्वयं वेगवती वायु भी इस रथ को मदमस्त बना रही है। रथ के अनुसरण के क्लेश रूप आघात से ही मानों (वह) हुंकार करती है। स्तब्धा यह मणिकिङ्किणी की रचना कुछ भी शब्द नहीं कर रही है। निष्पन्द तथा फैलाया हुआ यह ध्वज वस्त्र भी चँदोवे की शोभा को धारण कर रहा है। ॥10॥

और भी - समीपवर्ती लोगों के द्वारा अविच्छिन्न रूप से देखा गया यह वेगपूर्ण रथ आकाश रूप समुद्र के सेतुबन्ध के समान विस्तीर्ण दिखाई दे रहा है। ॥11॥

पवनंजय (देखकर)

रथ से पूर्व मनोरथ और मनोरथ से पूर्व यह रथ, इस प्रकार निश्चित रूप से ये दोनों पारस्परिक संघर्ष से मानों जिनका वेग बढ़ गया है, इस प्रकार दौड़ रहे हैं। ॥12॥

सूत - आयुष्मन्, विद्याधर लोक निकट ही दिखाई दे रहा है।

पवनंजय - (देखकर)

क्या यह रथ दौड़ रहा है, अथवा क्या यह विजयार्द्ध स्वयं दौड़ रहा है इस बात का निर्णय करने के लिए दोनों नेत्र से भी नहीं जान पा रहे हैं ओह विजयार्द्ध आ ही गया। ॥13॥

विदूषक - नहीं ऐसा मत कहो। तुम्हें आधी विजय प्राप्त नहीं हुई।

पवनंजय - (मन ही मन) खेद की बात है, इसके वचन से विजयार्द्ध प्राप्ति में विघ्न सा पड़ गया है।

विदूषक - तुम्हें निश्चित रूप से सम्पूर्ण विजय प्राप्त हो गई है।

सूत - (सामने की ओर निर्देश कर) आयुष्मन्! यह विजयार्द्ध की दक्षिण श्रेणी की वनपंक्ति है और यह घनी छाया वाले सन्तान वृक्ष से युक्त रजतमयी शिखर है।

पवनंजय - सारथी, यहीं रथ रोको, जब तक विलम्ब कर रही सेना की प्रतीक्षा करें।

सूत - जैसा आयुष्मान् ने कहा (जैसा कहा था, वैसा ही करता है)

पवनंजय – मित्र, हम दोनों उतरते हैं ।

विदूषक – जो आप कहते हैं ।

(दोनों उतरते हैं)

विदूषक – (आगे की ओर निर्देश कर) हे मित्र, यह युक्तिमती वंश के व्यक्तियों के साथ तुम्हारी अगवानी करने के लिए इधर आ रही है ।

(अनन्तर जैसा निर्देश किया था, वैसी युक्तिमती प्रवेश करती है)

युक्तिमती – महारानी केतुमती ने मुझे आज्ञा दी है कि कुमार के वापिस आने पर माङ्गलिक कार्य करो । (सामने देखकर) यह कुमार आ गया । समीप में जाकर यथोयोग्य कार्य करती हूँ (समीप में जाकर, वैसा करती हुई) कुमार की जय हो ।

पवनंजय – अरी युक्तिमती, पिताजी माँ के साथ कुशल तो हैं ।

युक्तिमती – ऐसा ही है, कुशल है । महाराज आपकी विजय से वृद्धि को प्राप्त हैं ।

विदूषक – आप ब्राह्मण को क्यों प्रणाम नहीं कर रही हैं ?

युक्तिमती – (मुस्कराहट के साथ) इस झूठी बात करने से बस करो ।

विदूषक – आप मुझे क्यों उलाहना दे रही हैं ।

युक्तिमती – आर्य, कौमुदी प्रासाद में आने पर भी तुमने मुझे स्मरण नहीं किया ।

विदूषक – (हास्य के साथ) मित्र दासी की पुत्री वसन्तमाला ने रहस्य भेदन कर अपराध किया है ।

पवनंजय – (मुस्कराकर) युक्तिमती, मित्र के बहाने से हमें उलाहना न दो । वह हमारे आने के प्रकट करने का समय नहीं था ।

युक्तिमती – आर्य तो आपको नमस्कार है ।

विदूषक – कल्याण हो ।

सूत – माननीया, केवल तुम सबको ही कुमार का आगमन अविदित नहीं है, अपितु हम लोगों को भी इससे पूर्व ज्ञात नहीं हुआ ।

पवनंजय – (मुस्कराकर) युक्तिमती, क्या तुम्हारी प्रियसखि वसन्तमाला सकुशल है ?

युक्तिमती – (विषादपूर्वक, मन ही मन) हूँ इस समय मन्द भाग्य वाली मैं क्या कहूँ । ठीक है । ऐसा कहती हूँ (प्रकट में) ऐसा ही है, प्रियसखी वसन्तमाला अंजना के साथ सकुशल है ।

विदूषक – (मुस्कराकर) माननीया, आपने इनके हृदय को ठीक जाना ।

युक्तिमती – दूसरी बात कहने को है ।

पवनंजय – क्या ?

युक्तिमती – स्वामिनी अंजना गर्भवती होकर वसन्तमाला के साथ महेन्द्रपुर चली गई ।

विदूषक – (सन्तोष के साथ) अरे सौभाग्य से बधाई हो ।

पवनंजय – युक्तिमती, पारितोषिक लो ।

(अपने हाथ कड़ा लेकर दे देता है ।)

युक्तिमती – (लेकर) मैं अनुगृहीत हूँ ।

पवनंजय – तो हम लोग प्रिया के साथ ही आकर पिताजी और माँ को देखेंगे ।

युक्तिमती – (अपने आप) हूँ इस समय मैंने क्या किया (प्रकट में) कुमार, यहाँ आकर

महाराज और महारानी के दर्शन किए बिना तुम्हारा जाना मुझे ठीक नहीं लग रहा है ।

सूत - युक्तिमती ने ठीक ही कहा है ।

पवनंजय - मुझे आया हुआ ही समझो । मैं मुहूर्त भर भी देर नहीं करुँगा । तो इसी समय पवनंजय आ रहा है, यह बात पिता और माँ से निवेदन कर दो ।

युक्तिमती - जो कुमार की आज्ञा । (विषाद पूर्वक मन ही मन) इसका परिणाम क्या होगा ?

(इस प्रकार चली जाती है)

पवनंजय - सारथी, तुम भी यहाँ ठहरकर मेरे वचनों के अनुसार सेनापति मुद्‌गर से कहो कि मैं महेन्द्रपुर जाकर प्रिया के साथ ही आकर पिताजी और माँ के दर्शन करुँगा । आप यहाँ पर सब के साथ प्रतीक्षा करें ।

सूत - आयुष्मान् ! इस समय अनुयायी कहाँ है ?

पवनंजय - मित्र साथ में ही आ रहा है । यह समस्त कार्यों में मन्त्री है, उन उन हंसी की बातों में परम मित्र है, युद्धों में तलवार के साथ भुजा है, इससे कुछ भी दु:साध्य नहीं है । ॥14॥

सूत - तो जाओ (रथ के साथ चला जाता है)

पवनंजय - (पास में देखकर)ओह यह कालमेघ आ गया है । तो इसी पर चढ़कर दोनों चलते हैं । (चढ़ने का अभिनय कर) मित्र, आओ चढ़े ।

विदूषक - मित्र, मैं समर्थ नहीं हूँ । यह बड़े वेग वाला है ।

पवनंजय - भले ही हो, मत डरो ।

विदूषक - वैसा ही हो ।

पवनंजय - हे मित्र, मद रूप जल की वर्षा करने वाले आकाश को पारकर पवनवेग से प्रेरित हुआ, बादल के समान श्यामल शरीर वाला यह हाथी इस समय सचमुच कालमेघ है । ॥15॥

(सामने देखकर) हे मित्र, पूर्व समुद्र के समीप नाभिगिरि दिखाई दे रहा है! जो यह अत्यधिक चंचल पंखों के समान कर्णपल्लवों से बहते हुए मद जल के स्रोत से युक्त झरनों को धारण कर रहा है । जिस प्रकार बड़ा हाथी वन को गन्ध से युक्त हाथियों के नितम्ब भाग पर अपने पुत्रों को धारण करता है । ॥16॥

विदूषक - हे मित्र, गजराज को रोको ।

पवनंजय - (हाथी को रोककर) मित्र, यह क्या है ।

विदूषक - आपके विद्याबल से स्थिर आसन वाला होने पर भी मैं इसके वेग से अत्यधिक थक गया हूँ । अत: इसी पर्वत की उद्यानवीथी में यह सरकण्डों के वन वाला छोटा सा सरोवर दिखाई दे रहा है, जब तक इसके तीर प्रदेश में मुहूर्त भर विश्राम कर दोनों चलते हैं ।

पवनंजय - जो तुम्हें रुचिकर लगे । (हाथी से उतारता हुआ)

पहले जो पदार्थ दूर होने के कारण कठिनाई से देखे जाने वाले और छोटे से प्रतीत होते थे, सज्जनों के स्वभाव के समान वे समीप में देखे जाने पर बड़े हो जाते हैं । ॥17॥

विदूषक – यह छोटा सा तालाब है ।

पवनंजय – तो उतरते हैं ।

(दोनों उतरने का अभिनय करते हैं)

पवनंजय – हे कालमेघ, विश्राम करने के लिए इस तालाब में स्नान करो ।

विदूषक – अरे देखो, तुम्हारे वचनों के अनुसार हाथी तालाब के जल में स्नान कर रहा है ।

पवनंजय – हे मित्र देखो ।

यह सूंड से छोड़े गये जलों से गालों के किनारे की खुजलाहट को दूर करता हुआ, मृणाल के टुकड़ों को बलात् उखाड़कर रस लेता हुआ, मुख उठाकर तैरता हुआ, हाथी के समान बड़े मकर की लीला का अनुभव करता हुआ, इस तालाब में डूबता, उतराता हुआ इच्छानुसार विहार कर रहा है । ॥18॥

विदूषक – हे मित्र, सल्लकी वृक्ष के नीचे बैठते हैं ।

पवनंजय – जैसा आप कहें । (दोनों बैठते हैं)

विदूषक – अंजना गर्भवती होकर महेन्द्रपुर को चली गई, ऐसा कहती हुई युक्तिमती कुछ शून्य हृदया सी क्यों हो गई थी । अतः यह बात इतनी सी नहीं है।

पवनंजय – मित्र, मैंने भी यही सोचा है और –

कुलाङ्गनायें आभिजात्य का पालन करने में रत, सब प्रकार से निन्दा से भयभीत, पातिव्रत को ग्रहण किए हुए तथा प्रशंसनीय चरित्र हुआ करती है । ॥19॥

विशेषकर यहाँ माता है ।

विदूषक – बात यही है । दूसरी बात यह है कि यदि वे महेन्द्रपुर में होती तो इतना अंजना को गए हुए हो गया, ऐसा नहीं हो सकता कि हमारे पास कोई सन्देशवाहक न आता । अतः यहाँ महेन्द्रपुर में नहीं हैं, ऐसा सोचता हूँ ।

पवनंजय – यह बात ठीक है (सोचकर) यदि अंजना महेन्द्रपुर नहीं गई तो युक्तिमती महेन्द्रपुर को जाने को उत्सुक हम लोगों को रोकती क्यों नहीं ?

विदूषक – बात यही है तथापि यदि महेन्द्रपुर में है तो अंजना को गए इतना समय बीत जाने पर हमारे पास सन्देशवाहक आता, यह दोष तो उसी प्रकार है ।

पवनंजय – यह दोनों ओर फाँसी वाली रस्सी है ।

विदूषक – यह बात सही-सही हम लोग कहाँ से प्राप्त करें ?

(अनन्तर प्रिया सहित वनचर प्रवेश करता है)

वनचर – रे रे लवलिका, वनवास का सुख अच्छा है । यहाँ पर पर्वतीय गुफायें घर हैं, करील के कन्दमूल भक्ष्य हैं, वन की भूमियों में विहार करते हैं, वेणुतण्डुल आहार है । ॥20॥

लवलिका – अरे चमूरक, तुमने ठीक कहा । क्योंकि –

नये-नये किसलय वस्त्र हैं, सुगन्धित कस्तूरी लेपन है, कक्कोल मुख की सुगन्ध है और हाथी के गण्डस्थल के मोती हार हैं । ॥21॥

और भी – मयूर के पंख रूपी कर्णाभूषण की माला, कानों में दन्तपत्र तथा चोटी में चमरी मृगों के बालों को शबरी धारण करती हैं । ॥22॥

अरे चमूरके अत्यधिक वन में घूमने से थक गया हूँ ।

चमूरक - तो आओ । सरोवर के किनारे सल्लकी के वन में विश्राम करें ।
(दोनों घूमते हैं)

विदूषक - (देखकर) हे मित्र, यह एक वनचर सहचरी के साथ यहाँ आ रहा है ।

पवनंजय - (देखकर) इस प्रकार का व्यक्ति बड़ा भाग्यशाली होता है, क्योंकि वियोग की कथा का भी जिसे अनुभव नहीं, प्रियतमा को प्रेम से लाकर पालन करता हुआ जो परिपूर्ण मनोरथ होता है, वह युवक कामिजनों में पुण्यशाली होता है । ।।23।।

चमूरक - (देखकर) इस सल्लकी के नीचे दो पुरुष कैसे बैठे हैं । इस प्रदेश में सामान्य मनुष्यों का प्रवेश सम्भव नहीं है । अत: निश्चित रूप से यह विद्याधर है। तो इनके समीप में जाकर हम दोनों प्रणाम करें ।

लवलिका - जो चमूरक कहता है ।
(दोनों समीप में जाकर प्रणाम करते हैं)

पवनंजय - यहीं विश्राम करो ।

चमूरक - जो स्वामी की आज्ञा ।
(दोनों बैठते हैं)

लवलिका - (स्मृति का अभिनय कर) अरे चमूरक, इस स्थान को देखकर स्मरण आ गया है । तब यहीं सल्लकी के नीचे दो अपूर्व स्त्रियाँ दिखाई दी थीं ।

चमूरक - अरे ठीक स्मरण किया ।

विदूषक - भद्रे, यहाँ पर दो स्त्रियाँ कैसे दिखाई दीं और वे कैसी थीं ?

लवलिका - आर्य वह शोचनीय और सदोष है ।

पवनंजय - भद्रमुख, कहो ।

चमूरक - स्वामी सुनें ।

पवनंजय - सावधान हूँ ।

चमूरक - कदाचित् रात्रि के प्रारम्भ में यहीं पर मैं इसके साथ आया था ।

पवनंजय - फिर क्या हुआ ?

चमूरक - अनन्तर एक भैरव वेश वाले पुरुष से अधिष्ठित एक यान आकाश से उतरा। उसके अन्दर स्त्री युगल था ।

पवनंजय - फिर क्या हुआ ?

चमूरक - अनन्तर क्षणभर बिताकर उस पुरुष ने भी, 'स्त्री ! इधर आओ, इस समय यहाँ क्या कार्य है ? हम तुम्हारी जन्मभूमि को जा रहे हैं' इस प्रकार पुन: पुन: आग्रहण किए जाने पर दूसरी स्त्री ऐसी स्थिति में पिताजी और माँ का दर्शन करने में समर्थ नहीं हूँ, इस प्रकार आँसू भरकर कहती हुई, यहाँ सल्लकी वृक्ष के नीचे स्थित थी ।

पवनंजय - (मन ही मन) इस समय क्या आ पड़ेगा ?

विदूषक - (मन ही मन) निश्चित रूप से वही हुआ ।

चमूरक - अनन्तर वह, अधिक कहने से क्या इस वन से नहीं निकलूँगी, इस प्रकार वचन देकर चुप हो गई । तब दूसरी स्त्री ने सखि तुम गर्भवती हो, इस समय

वन में ठहरने का कैसे निश्चय कर रही हो, इस दुष्प्रतिज्ञा को छोड़ो, 'हम दोनों महेन्द्रपुर चलें' ऐसा कहा । वह वचनों को न सुनती हुई रोने लगी।

पवनंजय – अरे कष्ट है, कष्ट है । अंजना पर ही यह घटित हुआ । पवनंजय इसके बाद सुनेगा ।

विदूषक – (मन ही मन) क्या उन्हीं पर ही यह घटित हुआ ।

चमूरक – अनन्तर उस पुरुष ने 'माननीया, स्वामिनी केतुमती की आज्ञा से तुम्हें लेकर जन्मभूमि तक पहुँचाने के लिए आया हूँ । इस समय कैसे तुम्हें मार्ग के बीच गहन वन में छोड़कर जाऊँ ? ऐसा कहा । अनन्तर उसने भी, इस समय अधिक कहने से क्या ? तुम अपनी स्वामिनी से कहना कि मैंने उसे जन्मभूमि में ही पहुँचा दिया, हम दोनों किसी प्रकार स्वजनों के साथ जाँयेगी, ऐसा कहा ।

पवनंजय – फिर क्या हुआ ।

चमूरक – अनन्तर उसने भी । क्या उपाय है ? तुम भी मेरी अकेली स्वामिनी हो । अतः तुम्हारी आज्ञा का भी मैं उल्लंघन नहीं कर सकता । दूसरी बात यह है – इसी प्रकार तुम्हारी जन्मभूमि में पहुँचाने में मैं निर्दय भी समर्थ नहीं हूँ । अतः तुम दोनों सर्वथा निजी व्यक्ति के साथ ही जाना । दूसरे की आज्ञा के अधीन मैंने कोई अतिक्रमण न किया हो, अत: क्षमा करना, ऐसा कहकर सर्वथा देवता प्रयत्नपूर्वक रक्षा करेंगे, ऐसा कहकर आकाश में उड़ गया ।

पवनंजय – (विषादपूर्वक) अनन्तर ।

चमूरक – अनन्तर वहां पर्वतीय उद्यान वीथी से इसी सैकड़ों पापी प्राणियों से व्याप्त यह मातङ्गमालिनी नामक गहन वन में पैरों से गिरती पड़ती सखि के साथ प्रविष्ट हुई ।

पवनंजय – (आक्रोश के साथ) प्रिये, इस समय कहाँ हो ? (मूर्छित हो जाता है)

विदूषक – (आँखों में आँसू भरकर) वह तो निश्चित रूप से निष्ठुर हो गई ।

चमूरक और लवलिका – आर्य, वह कौन ?

विदूषक – यह उसके पति है ।

दोनों – हाय, धिक्कार है ।

विदूषक – मित्र ! धैर्य धारण करो, धैर्य धारण करो ।

पवनंजय – (धैर्य धारण कर)

जो 'तीन चार मास में बिना विलम्ब किए ही मुझे वापिस आया जानो' ऐसा पूछकर उस समय चला गया था, वह मैं इतने समय में आया हूँ । हे दुर्बल शरीर वाली । इस प्रकार तुम्हारे ही बहुत बड़े कष्ट का हेतु इस समय प्राणप्रिय मैं स्वयं निर्लज्ज कैसे हूँ ? ॥24॥

विदूषक – ओह, भाग्य की दुश्चेष्टा ।

पवनंजय – बिना बाधा के ही क्रूर जंगली जानवरों से अधिष्ठित, वन की मध्यभूमि का अवगाहन करने वाली हे प्रेयसि तुम्हारे द्वारा खण्डित यह व्यक्ति इस समय भगोड़ी अवस्था को प्राप्त कराया गया । ॥25॥

चमूरक - आर्य यहाँ पर कौन सा उपाय है ?

विदूषक - इन्हें कैसे आश्वस्त करें ?

पवनंजय - बलात् जिसका पूर्णपात्र हरणकर लिया गया है, ऐसा मैं विद्याधर नारी से उत्पन्न न होता । हे दुर्बल शरीर वाली ! वन में आँसू भरी हुई मृगियों के द्वारा देखी जाती हुई तुमने प्रसव कैसे किया होगा ? ॥26॥

(विशेष करुणा के साथ) हे महेन्द्रराज पुत्री, मेरे प्रति आसक्त (तुम्हारा) अपना मन कहाँ ? और स्वभाव से उत्पन्न उदारता कहाँ ? तुमने एक बार में ही हम लोगों को शिथिलमनोरथ कैसे कर दिया ? ॥27॥

यहाँ पर ठहरने से क्या लाभ है ? मैं भी अंजना का अनुसरण करता हूँ । (उठता है)

विदूषक - (घबड़ाहट पूर्वक उठकर) बचाओ । कैसे साहस करने का निश्चय कर रहे हो ? अवश्य ही उनकी वनवासिनी देवियाँ रक्षा कर रही हैं । इस वन में तुम अकेले खोज नहीं कर सकते । अतः विजयार्द्ध जाकर समस्त विद्याधरों के साथ आकर खोजना चाहिए ।

पवनंजय - यह ठीक नहीं है ।

इस वन में कोई शरण नहीं हैं, मेरी प्राणप्रिया चली गई । चित्त को सम्मोहित करने वाले विष के समान नगर का कैसे सेवन करूँ । ॥28॥

विदूषक - तथापि यदि कदाचित् अंजना, अपनी वजह से आप जैसे सहायक का, जिसे जीवन की अपेक्षा नहीं हैं, वन प्रवेश सुनती है तो अपने प्राण त्याग देगी। अतः तुम्हारा यहाँ मातङ्गमालिनी नामक वन में प्रवेश ठीक नहीं है ।

पवनंजय - प्रियमित्र, प्रिया का जीवन भी सन्दिग्ध है । मुझे वृत्तान्त प्राप्त करने का समय कहाँ है ? भाग्य से जीवन के प्रति रुचि वाली यदि वह जीवित हो तो मैं यह मानता हूँ कि उसका मुझे देखने का अनुराग नियन्त्रित कर रहा है । ॥29॥

विदूषक - इस समय तुमने महेन्द्रपुर जाऊँगा, ऐसा कहकर प्रस्थान किया था ।

पवनंजय - हाँ ।

विदूषक - इस प्रकार महाराज, वत्स देर क्यों कर रहे हैं, अतः महेन्द्रपुर में सन्देशवाहक व्यक्ति को भेजेंगे । वहाँ पर भी तुम्हारे दिखलाई न देने पर महाराज क्या सोचेंगे । महेन्द्रराज, माता केतुमती, मनोवेगा सभी अन्यथा शङ्का करेंगे ।

पवनंजय - (विदूषक को हाथ में पकड़कर) मित्र, आपने मेरे वचनों का कभी उल्लंघन नहीं किया है, अतः मैं कुछ कहना चाहता हूँ ।

विदूषक - विश्वस्त होकर कहो ।

पवनंजय - मित्र, विजयार्द्ध जाकर आप शीघ्र ही विद्याधरों के साथ अंजना को खोजने के लिए आयें ।

विदूषक - (अवज्ञापूर्वक) इससे अधिक सुनने से बस ।

पवनंजय - हमारे विरह से दुःखी मत होओ । कार्य के विषय में ही विचार करो ।

विदूषक - वन के मध्य में मित्र को छोड़कर नगर में कैसे जाऊँगा ।

पवनंजय – मेरे शरीर के स्पर्श की सौगन्ध है । कार्य की निष्पत्ति के लिए इस समय जाओ । मैं भी तुम्हारे आने की यहीं प्रतीक्षा करता हूँ ।

विदूषक – (आँखों में आँसू भरकर) क्या करूँ (मन ही मन) अस्तु ! मैं भी उन्हें खोजने के लिए समस्त विद्याधरों को यहाँ लाता हूँ ।

(चला जाता है)

पवनंजय – (उठकर) अंजना की खोज के लिए मातङ्गमालिनी नामक वन में जाता हूँ।

चमूरक तथा लवलिका – जब तक बन्धुजन आँयेगे, तब तक क्या स्वामी प्रतीक्षा नहीं करेंगे ?

पवनंजय – विद्याधर लोग भी मातङ्गमालिनी में प्रवेश करेंगे ही । उनको हमारा प्रवेश बतलाने के लिए आप यहीं ठहरें ।

चमूरक – स्वामी लोग स्वच्छन्दचारी होते हैं ।

(प्रणाम करके लवलिका के साथ चला जाता है)

पवनंजय – (परिक्रमा देता हुआ, पीछे से देखकर) क्या कालमेघ इस समय भी मेरा अनुसरण कर रहा है ।

भद्र ! तुम वन में नए सल्लकी के किसलयों का आस्वादन करते हुए पुनः पद्मसरोवर में स्नान करने के सुखों से अपने आपका मन बहलाते हुए हथनियों और बच्चों के साथ अपनी इच्छानुसार विहार करने के उत्सवों को पाकर हे गन्धहस्तियों के स्वामी तुम अपने समूह के अधिराज्य की लक्ष्मी का इच्छानुसार सेवन करो । ॥30॥

क्या बात है, यह भी असाधारण प्रेम के कारण मेरा ही अनुसरण कर रहा है । तो इधर आओ । (परिक्रमा देकर, सामने देखकर)

जहाँ पर वह प्रिया गयी है, वह मातङ्गमालिनी अटवी आ गई है । तो यहीं पर घूमता हुआ मृगनयनी को खोजता हूँ ।

(चला जाता है)

इस प्रकार श्री हस्तिमल्ल विरचित अंजना पवनंजय नामक नाटक में पञ्चम अङ्क समाप्त ।

षष्ठो अङ्क

(अनन्तर वीणा बजाते हुए गन्धर्व मणिचूड और सहचरी रत्नचूडा प्रवेश करते हैं)

मणिचूड – बादलों के प्रथम उदय होने पर नए जल बिन्दु के गिरने से कमल के बन्द होने पर छिपी हुई सहचरी को विरहातुर भौंरा चारों ओर से ढूंढ रहा है । ॥1॥

रत्नचूडा – मेघ के समय वधू कमलिनी को देखो । यह प्रिय से वियुक्त हुई सी यहाँ म्लान पड़ रही है ।

दोनों – उत्कट काम के बाणों के वर्षा काल में सुदुस्सह होने पर कौन धीर स्त्रीसमागम को छोड़कर जीवित रहते हैं । ॥2॥

रत्नचूडा - ओह इस गीत की वस्तु के उपोद्‌घात से मुझे उस उन्मत्त राजपुत्र की कुछ याद आई है, जो कि उस प्रकार की भी उस प्रिया अंजना को विरहयुक्त करके इतने समय तक विद्यमान है ।

मणिचूड - विरह से थकी हुई अंजना के इतने काल तक छोड़कर स्थित हुआ पवनंजय वास्तव में उन्मत्त हो गया है । ॥3॥

रत्नचूडा - पुरुष सर्वथा निष्ठुर होते हैं ।

मणिचूड - प्रिये, ऐसा मत कहो । यहाँ पर भाग्य को ही उलाहना देना चाहिए । अन्यथा कहाँ तो वह महेन्द्र पुत्री और कहाँ यह गहन मातङ्गमालिनी नामक वन । दूसरे जन्म का ही कर्मपरिपाक अवश्य ही अनुभाव्य होता है । ॥4॥

रत्नचूडा - बात यही है अन्यथा उस जैसी सहचरी के बिना वह इतने समय तक कैसे रह सकता है ? मैं नवीन परिचित होने पर भी इतने समय को भी न देखती हुई अत्यधिक उत्कण्ठित हूँ । सर्वथा वह पुत्र महान् प्रभाव वाला होगा, जिसके जन्म से उसने वनवास के दुःख को बिताया

मणिचूड - बात यही है । (स्पर्श का अभिनय कर)

इस समय प्रत्येक नए जल कणों की धूलि को ले जाने वाली सुन्दर वायु के द्वारा धीरे से वर्षा के द्वारा यह वीणातन्त्री भीग रही है । तो यहाँ से हम दोनों चलते हैं । ॥5॥

रत्नचूडा - आर्यपुत्र की जो आज्ञा ।

(उठकर दोनों निकल जाते हैं)

मिश्रविष्कम्भ

(अनन्तर उन्मत्त वेष वाला पवनंजय प्रवेश करता है)

पवनंजय - (कोप सहित) अरी पापिन्, मेरे प्रभाव से अनभिज्ञ अपमान करने वाली मातङ्गमालिनि

इधर उधर इस प्रकार मेरे द्वारा बहुत समय तक ढूँढने पर भी धृष्टता के कारण चुराई हुई मेरी सहचरी को नहीं दिखलाती हो तो इसमें सन्देह नहीं कि इस समय बलात् तुम्हें इस बाण के अग्रभाग से निकली हुई ज्वाला से जटिल दावाग्नि जला देगी । ॥6॥

(प्रत्यंचा खींचकर बाण चढ़ाना चाहता है । हंसकर) मत डरो ।

बिना स्नान के ही हम लोगों का आवेग कैसा ? इस प्रकार अस्थिर प्रकृति मातङ्गमालिका की चुराने की धृष्टता कैसे हो सकती है । हमारे प्रत्यञ्चा के घोष मन्त्र से ही यह जंगल सब ओर से व्याकुलित है क्योंकि -

गुफा के अग्रभाग से फैलने वाली बड़ी कठिनाई से सुनी जाने वाली प्रतिध्वनि से स्पष्ट रूप से कन्दरा को फोड़ने वाला पर्वत तत्क्षण क्रन्दन कर रहा है। ये भय से विह्वल सिंह वन को छोड़कर अष्टा पदों के साथ यहाँ से शीघ्र ही कहीं भाग रहे हैं । ॥7॥

(सामने देखकर) ओह, यह हमारा कालमेघ है ।

बढ़े हुए मद के झरने से युक्त रुके हुए कर्णताल वाला क्रोध से अनेक बार नेत्र रूप किरणों से दश दिशाओं को जलाता हुआ सा, शीघ्र ही दायें दाँत की अर्गला को उठाये हुए, सामने हाथ को रखे हुए इस समय युद्ध की शङ्का से देख रहा है । ॥8॥

हे श्रेष्ठ गन्धहस्तिन्, बिना किसी विषय के ही इस युद्ध के उद्योग से बस करो। यह बेचारी मातङ्गमालिनी निरपराध है । देखो ।

चंचल किसलय रूप हाथों मे आदरपूर्वक बुलाती हुई, झुके हुए वृक्षों की डालों के अग्रभाग से विनम्रता से झुकी हुई यह सामने विकसित होते हुए मालुधानी के पुष्पों के समूह के गिराने से हमारे लिए पूजा की सामग्री (अर्घ्य) रूपी लाजाञ्जलि ला रही है । ॥9॥

तो इस समय हम लोगों को जहाँ पहले नहीं खोजा था, ऐसे वन प्रदेशों में खोजना चाहिए । तो आओ ।

हे हाथी, तुम्हारी सूंड के आकार के समान दोनों जंघाओं की गति ही तुम्हारी गति है । तुम्हारे मद की काली रेखा रोमपंक्ति की अत्यधिक समानता को धारण करती है। जिसका स्तनों का तटयुगल तुम्हारे गण्डस्थल के समान है, उस हरिणियों की सी नेत्र वाली को हम ढूंढ रहे हैं ॥10॥ (परिक्रमा देकर और आगे की ओर शोक सहित देखकर)

अरे बड़े कष्ट की बात है, यह वनस्थली जाम की नोंकों से कण्टकित है। बड़े खेद की बात है, इसमें प्रिया पैदल कैसे गई होगी । ॥11॥

(सोचकर) इन मार्गों में सखी का आगमन वसन्तमाला नहीं सहन करती है । तो यहाँ से हम लोग चलते हैं । (परिक्रमा देकर और हर्षपूर्वक देखकर) मैंने प्रिया का मार्ग देख ही लिया । क्योंकि

उसकी गति का कथन करने वाली वह यह महावर के रस से अङ्कित चरणपंक्ति मेरे द्वारा समीप में ही दिखाई दे रही है । ॥12॥

तो इस समय उसी मार्ग से जाता हूँ (समीप में जाकर, खेद पूर्वक देखकर) क्या ये कदम्ब के फूलों के समूह का अनुकरण करने वाले, इन्द्रधनुष के द्रव के बिन्दुओं को धारण करने के कारण सुन्दर वर्षाकाल की सूचना देने वाले कामाग्नि की चिनगारी के टुकड़े रूप महेन्द्रगोप विद्यमान हैं । ॥13।

तो विरही लोगों के संक्षोभ रूपी युद्ध का दुलारा यह वर्षा समय प्रवृत्त ही है । (आकाश की ओर देखकर)

यह बादल जोर से गर्जता हुआ समीप में जल की धारा वर्षा रहा है । विद्युत समूह चमक रहे हैं । हा, हा, धिक् धिक्, कष्ट, कष्ट है । ॥14॥ (परिक्रमा देकर और हर्षपूर्वक देखकर)

माननी ने मार्ग लक्षित कर ही लिया । यहीं पर निश्चित रूप से मेरे द्वारा प्रवास से अपराध किए जाने पर रोष से प्रिया की लड़खड़ाती हुई गतियों में क्रोध के कारण जो धागा टूटने से बिखर गया था, ऐसा मोतियों का हार मेरे द्वारा देखा गया । ॥15॥

(सावधानी पूर्वक देखकर) - समीप में नए-नए मोती रूप फूलों से शोभित शङ्ख की स्त्री का अनुसरण करती हुई यह हाथी के दाँतों की अर्गला कैसे है ? हमारे विपरीत भाग्य

से ये भी हाथी दाँत के मोती हो गए । तो दूसरी ओर चलते हैं । (परिक्रमा देकर और देखकर) निश्चित रूप से यह वृक्षों पर लाल अशोक उत्पादित है । ठीक है, इससे याचना करूंगा । हे महान् वृक्ष रक्ताशोक,

तुम उस नितम्बिनी को मुझे दिखला दो । उसके बायें चरणकमल से असमय में ही पुष्पोद्गम को देने वाले आपका सम्मान करूँगा । ॥16॥ (सोचकर घबड़ाहट के साथ)

मेरे शोचनीय अवस्था को प्राप्त कर लेने पर शोक से पराङ्मुख हुआ यह अपने अशोक नाम की सार्थकता को चुपचाप प्रकाशित कर रहा है । ॥17॥

तो यहाँ से हम लोग (दूसरी ओर जाकर और देखकर) यह कामिनी स्त्रियों के मुख की मदिरा के कुरले के रस को चाहने वाला बकुल है । तो इससे याचना करता हूँ । अरे केसर, नए पुष्प की मेखला रूप गुण जिसे प्रिय है, ऐसी मेरी प्रिया को यदि तुम दिखला दोगे तो हे मित्र मैं निश्चित रूप से तुम्हें उसके मुख की गन्ध रूप दोहले का विस्तार कर दूँगा । ॥18॥

(विचार कर) जिन्हें अंजना का वृत्तान्त विदित नहीं है, ऐसे हमें यह पत्तों के अग्रभाग से चूने वाली वर्षा की अग्रबिन्दुओं से आँसू छोड़कर चुपचाप ही शोक कर रहा है । निश्चित रूप से उसने हमें छोड़ दिया है । (परिक्रमा देकर और उत्कण्ठा के साथ देखकर)

यह नई शिरीष की माला से श्याम, श्याम विहग मुझे उस अंजना की बाहुलता के युगल कंधों की याद दिलाता है ॥19॥

(सामने देखकर) ओह, यह इधर तमाल वृक्ष के नीचे इन्द्रनीलमणि निर्मित शिलापट्ट पर चमरी बैठी है । तो इससे पूछता हूँ । अरी चमरी,

मैं तुमसे पूछता हूँ, कहो, क्या लड़खड़ाए हुए, विषम चरणन्यास से मेरी प्रिया ने इस वन प्रदेश का सम्मान किया है ? शोक और कष्ट के कारण विरह में एकत्रित जिसके बिखरे हुए केशपाश हैं ऐसा यह तुम्हारे बालों का समूह स्पष्ट रूप से अनुसरण करता है । ॥20॥

क्या वह नए जलकणों के सिंचन के भय से इसी पर्वत के समीपवर्ती गुफागृह में प्रविष्ट हो गई । निश्चित रूप से नृशंस वर्षाकाल सब जगह अपराधी होता है । (सोचकर) अस्तु। जिसे पहले नहीं खोजा है, ऐसी इसे मैं पर्वत की उपत्यका में खोजता हूँ । (परिक्रमा देकर और देखकर)

प्रवास पर गए हुए व्यक्तियों के धैर्य रूप सर्वस्व का नाश करने के लिए जोश में भरा हुआ यह धनुर्धर कामदेव सामने रोकता हुआ विद्यमान है । ॥21॥ तो इस समय आक्रमण करता हूँ ।

पहले अनङ्ग (अङ्गरहित) हो, इस प्रकार बहुत बड़ी रूढ़ि का मिथ्या ज्ञान कर विरत होकर सैकड़ों बाणों से बाँधने से वञ्चित हुए तुम प्रच्छन्न विचरण करते रहे । आज स्वयं सज्जित होकर मूर्तिमान यहाँ यकायक आ गए हो ।

दुर्मद, नीच कामदेव क्या तुम मुझे दूसरों जैसा मानते हो । ॥22॥

(सोचकर) सर्वथा यह हमारे इस प्रकार के उलाहने को योग्य नहीं है । क्योंकि ।

चिरकाल तक भाग्य की रुकावट से परस्पर अलग हुए जोड़ों को यह भगवान् रतिवल्लभ शीघ्र ही [illegible] में समर्थ है । ॥23॥

तो इस समय इससे मिल जाता हूँ । अहो कामदेव,

कहो, कहो, तुम्हारे दर्प रूप सर्वस्व की भूमि स्वरूप, किसलिय के समान सुकुमार, मेरी शरीरधारी प्राण, चंचल हरिण के समान नेत्र वाली, वन के मध्य में स्वयं संचार करती हुई वनलक्ष्मी क्या तुमने पहले देखी है । ॥24॥

(सोचकर, हास्यपूर्वक) मैं तो उन्मत्त हो गया हूँ । खेद की बात है, तुम कामदेव नहीं हो । यह पर्वत की ढलान पर रुकी हुई स्फटिक की शिलाभित्ति पर संक्रान्त हुआ मेरा प्रतिबिम्ब है । तो दूसरी ओर खोजता हूँ । (परिक्रमा देकर और उत्कण्ठा पूर्वक देखकर)

इस समय पवित्र मन्द मुस्कराहट वाली, फूले हुए स्वच्छ पुष्पों से रमणीय यह कुन्दलता मुझे उसकी मन्दमुस्कराहट की याद दिला रही है । ॥25॥

यह कदली यहीं समीप में विद्यमान है । तो इसी से पूछता हूं । अरी कदली,

अप्सराओं के सुविदित कुल में उत्पन्न तुम्हें भली प्रकार जानते हैं । तो आपसे प्रेम के कारण पूछते हैं, जरा ध्यान दो । तुम सब भी जिसे देखकर सौन्दर्य से विस्मत हुए थे । यह विद्याधरसुन्दरी क्या तुम्हारे दृष्टिगोचर हुई । ॥26॥

(सोचकर) यह रम्भा की समता के कारण कदली से ही मैं अप्सरा की भूल से बोल रहा हूँ । अस्तु ! इससे पूछता हूँ ।

हे रम्भोरु ! जिसके दोनों जंघाओं की उपमा पाकर तुम अत्यधिक प्रशंसित हो रही हो, वह मेरी प्राणवल्लभा क्या यहाँ से गई है । ॥27॥

अथवा यह भी सुसंगत नहीं है । क्योंकि – आज भी शीतल यह केले का स्तम्भ बिलकुल भी उसके जङ्घायुगल से समता प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि उसका जंघायुगल वर्षाकाल में भी सुखकर उष्मा वाला रहता था । ॥28॥

तो इससे कैसे पूछूँ (सोचकर) प्रिया इसके समीप सर्वथा नहीं गई है । नहीं तो निश्चित रूप से अंजना की विरहाग्नि के ताप को वसन्तमाला निश्चित रूप से दूर करती । शीतल केले के पत्ते लेकर शय्या रचती और हवा करती ।॥29॥

इस केले का पता तोड़ा नहीं गया है । तो दूसरी ओर खोजता हूँ । (परिक्रमा देकर, स्पर्श का अभिनय कर) वन मे विहार करने के व्यसनी इसी सामने के वायु से पूछता हूँ। अरे वायु, जरा सुनो ।

क्या (मेरी) पत्नी यहीं रहती है । मयूर के समान नेत्र वाली इसके रतिश्रम का कथन करने वाले कपोल रेखाओं के पीसने की बूँदों को हटाने में तुम्हीं समर्थ हो । ॥30॥

(गन्ध को सूँघकर हर्षपूर्वक)

प्रिया की स्वास के गन्ध को प्रकट करने वाला यह वायु सामने बिना बोले ही कह रहा है कि यह तुम्हारी प्रिया खड़ी ही है । ॥31॥

तो अब इसी वायु के विपरीत जाता हूँ । (घूमकर और देखकर) क्या यह कपूर के वृक्ष के नीचे नयी-नयी शिला की पर्त जिसमें उगी है, ऐसे शिलातल पर कस्तूरी मृग है। अस्तु ! तो इसी से ही पूछता हूँ । अरे वनलक्ष्मी का स्पर्श करने वाले कस्तूरीमृग,

मेरे विरह में मेरी प्रिया लम्बी-लम्बी साँस ले लेकर क्या यहां गई है ? जिसकी स्वाभाविक सांस की गन्ध को तुम्हारी नाभि की गन्ध अनुसरण कर रही है । ॥32॥

(रोष पूर्वक)

ग्रन्थिपर्ण के कौर को धिक्कार है ? यह स्वेच्छा से रस प्रदान करना आरम्भ करता है । तो अपने कार्य को चाहने वाले हम लोगों का इससे निजी क्या कार्य है ॥13॥

(दूसरी ओर जाकर और देखकर) यह चारों ओर से निकलती हुई कली से सुकुमार आम्रवृक्ष है । तो इससे पूछता हूँ ।

तुम्हारी यह सुन्दर आम्रमंजरी जिसके कानों के आभूषण के योग्य थी, कर्णपर्यन्त विस्तृत लोचनों वाली, झुकी हुई भौंहों वाली हाथी के समान क्रीड़ायुक्त गमन करने वाली वह कहीं चली गई ॥34॥

(हर्ष पूर्वक) ओह, समुच्चलित किसलय रूपी हाथ से यह पश्चिम दिशा को ओर निर्देश कर रही है, तो निश्चित रूप से यहीं से ही गई है । तो मैं भी इसी मार्ग से जाता हूँ । (घूमता है)

मन्दभाग्य वाली मैं अपने आपको कितने काल तक धारण करूँगी ।

(ऐसा आधा कहने पर)

पवनंजय- (चारों ओर घूमते हुए कान लगाकर) प्रिया का ही स्वर संयोग कैसा?
(पुनः आकाश में)
प्रिय सखि वसन्तमाला आर्य पुत्र ने उपेक्षा कर दी ॥35॥

पवनंजय- (हर्षपूर्वक) ओह, प्रिया ही मिल गई । तो समीप में जाता हूँ ।
(समीप में जाते हुए)

अरे । आप प्राण के समान मेरी उपेक्षा कैसे कर सकती हो । विरह से दुःखी हुआ जो इस प्रकार तुम्हारी ही एक मात्र शरण की अपेक्षा करता है । समीप में जाकर,चारों ओर देखकर, घबड़ाहट के साथ) कहाँ छिप गई होगी । (आकाश में लक्ष्य बाँधकर)

मेरा चित्त तुम्हारे दर्शनरूप उत्सव का उत्सुक है, हे भयशीले मेरे वापिस आ जाने पर तुम क्यों छिप गई हो । बिना स्थान के ही तुम कुपित हो । विरह के कारण उस प्रकार खिन्न हुए मुझे क्यों खिन्न करने में प्रवृत्त हो गई हो ॥36॥

वसन्तमाला, क्या इस समय तुम भी प्रिय सखी को प्रसन्न नहीं कर रही हो ?

(पुनः आकाश में मैं मन्दभाग्य वाली धारण करूंगी, इस प्रकाश पूर्वोक्त पढ़ा जाता है)

पवनंजय - (सुनकर और देखकर) क्या यह फल रूपी किरीट के समूह से झुकी हुई अनार की छड़ी पर बैठा हुआ तोता बोल रहा है । प्रिया के स्वर का अनुकरण करने वाले इस सुन्दर और मधुर आलाप से हम ठगे गए है । (सोचकर) अथवा इसने बहुत बड़ा उपकार किया । जो कि इसने जाति के स्वभाव से स्वाभाविक पाण्डित्य के बल से अवधारित गाढ़ रूप में वसन्तमाला के साथ प्रिया की स्थिति को सूचित किया । तो जिसे अंजना का वृतान्त ज्ञात है, ऐसे इसी तोते से पूछता हूँ ।

जिसकी बाईं कलाई में स्थित सुन्दर रत्नमयी कंगन पर शोभा पाकर मेरे कंधो के मित्र होकर उत्कृष्ट प्रीति को प्राप्त होते थे। सुन्दर वाणी में तुम जिसके सदृश हो, जिसके नाखूनों की कान्ति यह तुम्हारी चोंच धारण करती है, कहो, वह मेरी कान्ता कहाँ है ॥38॥

क्या यह पकने के कारण फूटे हुए अनार के फल का आस्वादन करने में प्रवृत हो गया है। पुनः हमारे प्रश्न के आग्रह से इसकी अपनी अभिलाषा का भङ्ग न हो जाय अत इस समय इसी स्थान में प्रिया की स्थिति बतला दी (कान लगाकर हर्ष पूर्वक)

इधर किञ्चित करधनी के तन्तुओं की ध्वनि सुनाई पड़ रही है। यह स्थूल जघनस्थल के भार के कारण आलस्य युक्त गमन को कहने वाला श्रुतिसुख है। हे हृदय ! तुम्हारा दुःख ध्वस्त हो गया। तुम्हारी विधुरता विरत हो गई। वह झुकी हुई भौंहों वाली तुम्हारे सामने यहीं पर प्राप्त हो गई है ॥39॥

तो समीप में जाता हूँ (समीप में जाकर) क्या यह सारस की आवाज है।

मद से मन्थर उच्चारण करते हुए, उसकी करधनी का आवाज का अनुसरण करने वाली यह सरसी (छोटा तालाब) सारस की आवाज से मुझे दूर से लुब्ध कर रही है ॥40॥

(सोचकर) अंजना को यहीं आना चाहिए। प्रायः संताप का निवारण करने में समर्थ सरोवरों के तीर शिशिरोपचार की शीघ्रता वाले विरही लोगों को ढूँढते हैं। तो इससे पूछता हूँ। अरी सरसी सुनो

जिसकी दोनों भ्रूरेखाये तुम्हारी लहरों, दोनों भुजायें कमलनाल की लता, चित्त प्रसन्न जल, कटि भाग रेत, मुख कमल तथा दोनों नेत्र नीलकमल की समानता को धारण करती है। जिस प्रियतमा का कमल के मध्य स्थित लक्ष्मी अनुसरण करती है, वह अबला क्या तपोवन के समीप चली गई है ॥41॥

क्या बात है ? यह सरसी बिना उत्तर दिए ही पहले के समान स्थित है। इसने निश्चित रूप से अपने जड़स्वभाव को प्रदर्शित किया है। जब तक तीर पर स्थित इसी केतकी से पूछता हूँ।

अरी केतकी, क्या तेरे कामियों के पुष्प पत्र रूप काम की रेखा के योग्य मेरे कर्णाभूषण की लीला को मेरी प्रणयिनी ने अपने कपोल के समान पीले कान में धारण किया है ॥42॥

(सोचकर) अरे ऐसा नहीं हो सकता। हमारे विरह से खिन्न महेन्द्र पुत्री का यह कौन सा प्रसाधन का अवसर है। (देखकर) यह फूलों के आसव का लंपट भौंरा इधर उधर भ्रमण कर रहा है। तो पूछता हूँ। अरे भ्रमरी के प्राणेश्वर

तुम्हारी ध्वनि कानों को रमाने वाली, हमारे मिलन के लिए उत्कण्ठित सुन्दर कण्ठ वाली के गान से शून्य होने पर भी आपका यह मनोहर झंकारी नाद जिसके धीमे उच्चारण रूप समान गुण को प्राप्त करने में समर्थ है ॥43॥

क्या बात है, अनवस्थित होकर भौंरा पुनः (ध्वनि को) नहीं छोड़ रहा है। (हंसकर) अथवा यह भौंरा पूछने पर क्या प्रत्युत्तर देगा। इधर से हम लोग (परिक्रमा देते हुए देखकर) ओह, यह रजतगिरि के शिखर तल का रेतीला तट इच्छानुसार विहार करने के योग्य है। (उत्कण्ठा के साथ प्रत्यक्ष के समान आकाश में लक्ष्य बाँधकर)

हे वरारोहे ! मेरे हाथ का सहारा लेकर आगे चले [illegible] स्थल के समान इस कमलिनी सरोवर के किनारे के रेतीले तट पर आरोहण करो ॥44॥

(सामने देखकर और सोचकर) इसी रेतीले तट के तल पर उगी हुई स्थलकमालिनी की घनी छाया में बैठे हुए चक्रवाक के जोड़े से पूछता हूँ ।

तुम दोनों जिसके इन दोनों स्तनों की समता करने में समर्थ हो ऐसी उस कान्ता ने क्या तुम दोनों को नेत्रोत्सव दिया ॥45॥

ये दोनों कैसे

परस्पर प्रेम रस से लाए मृणाल का आस्वादन करने में प्रवृत्त हो गए है । ये दोनों विश्वास की लीला के सुख को अपनी इच्छानुसार चिरकाल तक भोगें ॥46॥

(अन्तरङ्ग में खेद के साथ साँस लेकर, आकाश में लक्ष्य को बाँधकर) प्रिये महेन्द्रराज पुत्रि,

तुम आँसू भरे हुए अपने दोनों नेत्रों को और पवनञ्जय को अञ्जन से मुक्त मत करो। उन्हें और मुझे आनन्द से युक्त आसुँओं से विरह के अन्त में पूर्ण मनोरथों से रँग दो ॥46॥

(परिक्रमा देता हुआ) हाय, यह क्या है ?

स्वयं महान् अङ्ग इस समय विवश होकर शिथिल हो रहे हैं । अत्यधिक भयभीत होने के कारण धनुष बाण सहित हाथ गिर गया है । खिन्न गति दोनों पैरों को लड़खड़ा रही है, वाणी गद्‌गद् हो गई है, दोनों नेत्र आँसुओं से रूद्ध हो गये है, मेरा हृदय कुछ क्षुभित हो रहा है ॥49॥

(सामने देखकर) तो इसी घनी छाया वाले चन्दन से युक्त नव विकसित वनसरोवर के फूलों के मकरन्द के परिचय से सुगन्धित मन्द वायु से भली प्रकार सेवित लतामण्डप में प्रवेश कर, स्वंय गिरे हुए वसन्त के फूलों से रचित शय्या पर चन्द्रकान्तमणि निर्मित शिलापट्ट पर चन्दन के वृक्ष के पास ही रूककर कुछ समय विश्राम करता हूँ (वैसा कर)

इस विरह व्यथा से मैं अन्य दशा को ले जाया गया हूँ । महेन्द्र राजा की पुत्री की प्रवृत्ति को कौन निवेदन करे ॥49॥

(अनन्तर प्रतिसूर्य प्रवेश करता है)

प्रतिसूर्य - दूत के मुख से मुझे राजर्षि प्रहलाद ने आदेश दिया है कि विजयार्द्ध से निकलकर दन्तिपर्वत की ओर जाते हुए विश्राम के लिए सरोवण सरसी में उतरे हुए पर्वतीय बाड़े के निवासी वनचर से अजंना का मातङ्गमालिनी में प्रवेश प्राप्त कर (जानकर) मैं अजंना को बिना देखे इधर से नहीं जाऊँगा, इस प्रकार पवनंजय अत्यधिक क्रोध के कारण वही ठहर गए । इस वृतान्त को प्रहसित से प्राप्त कर हम सब सरोवण तीर पर उतर गए हैं । अनन्तर वहीं के वनचर के द्वारा मातङ्गमालिनी में ही अर्जना को खोजने के लिए वह प्रविष्ट हो गए, ऐसा कहा गया है । इस प्रकार वत्सा अर्जना को और पवनंजय को खोजने के लिए आपको भी आ जाना चाहिए । मैं इस मातङ्गमालिनी में प्रविष्ट

हो गया हूँ। जब तक कुमार पवनंजय को खोजता हूँ। (घूमकर और देखकर) ओह, आकाशतल इन्द्रधनुष के प्रकारों से चित्रित है। इन्द्रगोप के समूह द्वारा किए गए उपहार वाला पृथ्वीतल है। दिशायें ककुम के पराग के धूसर है। मन्द वायु प्रस्फुटित हुई केतकी की पराग से धूसरित है। वनस्थली नए खिली हुए कन्दली की कलियों से चित्रविचित्र है। मयूर की ध्वनि केअन्तराल में गिरे हुए इन्द्रधनुष के विभ्रम को धारण करने वाले, नृत्य करते समय मोरों के द्वारा गन्ध युक्त पर्वत शिखर चोंचो से चन्द्रकित (चन्द्रमा के समान आकार युक्त) किए जा रहे हैं। इस प्रकार मैं मानता हूँ कि इस समय पवनंजय कष्टकर दशा का अनुभव कर रहे हैं। मातङ्गमालिनी को चारों ओर से देख लिया। तो इसी गन्धर्वराज मणिचूड के आवासभूत रत्नकूट पर्वत के तलहटी के उपवन की समीपवर्ती भूमि में स्थित वन पंक्ति वाली वनमाला को खोजता हूँ। (घूमकर और देखकर) ओह, यह रेतीले तलों पर हाथी के पद पंक्तियों से अनुसृत लड़खड़ाने से विषम पैरों के चिन्हों की कतार है। (देखकर)

स्पष्ट रूप से ये विद्याधर राजलक्ष्मी के साम्राज्य के चिन्ह हैं। तो प्रहलाद के पुत्र पवनंजय के पैरों के चिन्हों को यह पंक्ति भली प्रकार दिखाई दी ॥50॥

ये निश्चित रूप से उसके सहचारी कालमेघ के पैर हैं। तो इस समय इन्हीं पैरों के चिन्हों की कतार का अनुसरण करता हुआ जा रहा हूँ। (घूमकर और देखकर) क्या बात है, यह पैरों के चिन्हों का मार्ग भी इस पर्वत की जगती पर स्थित शिलातल पर नहीं दिखाई दे रहा है। तो यहाँ क्या उपाय है ?

(देखकर) ओह, यह मकरन्द की बावड़ी के तीर के समीप पवनंजय का सामान्य रूप से प्रिय सखा श्रेष्ठ गज कालमेघ बैठा है। तो पवनंजय दिखाई पड़ ही गया। (समीप में जाकर)

भद्र नामक हाथियों में श्रेष्ठ आप क्या अच्छी तरह हैं क्या तुम सुखी हो। क्या तुम्हारा प्रिय मित्र प्रहलाद राजा का पुत्र कुशल है ? जिसके स्नेह से अनुसरण करते हुए आपने कष्टकर अवस्था का अनुभव किया, प्रिया के वियोग से दुखी रूप में स्थित वह पवनंजय कहाँ है ॥51॥

(सुनकर) ओह मन्दस्निग्ध कण्ठगर्जन से तिरछी गर्दन किये हुए मेरे वचन को यह स्वीकार कर रहा है। तो पवनंजय को समीपवर्ती होना चाहिए। जब तक इसी मकरन्द वापिका के किनारे के प्रदेश में खोजता हूँ।

(परिक्रमा देकर, सामने शङ्का सहित देखकर)

बाण से युक्त यह किसका धनुष गिरा है।

(देखकर) पवनंजय के बाणों पर स्पष्ट रूप से ये नाम के अक्षर दिखाई दे रहे हैं (शोक सहित) तो यह क्या है ? (सोचकर) प्राण के समान प्रिया के वियोग से विवश उसके हाथों के अग्रभाग से यह गिर गया है। तो कामदेव के द्वारा यह कैसी कष्टकर दशा को ले जाया जा रहा है ॥52॥

(सामने देखकर शङ्का सहित)

कमलिनी के तीर पर लतामण्डल में फूलों की शय्या पर यह कौन ध्यान से एकाग्रमन होकर दोनों नेत्र कर रोमाञ्च को छोड़ रहा है । हाँ मुझे ज्ञात हो गया । विरह काल में सैकड़ों मनोरथों से प्रेयसी का प्रत्यक्ष कर गाढ़ आलिंगन के समय मिलन के उत्सव रूपी रस के व्यापार में पारंगत ॥53॥

(देखकर) क्या यह पवनंजय ही हो गया है ?

यह हाथी के कण्ठ में पड़ी हुई रस्सी के घिसने से हुए घाव को प्रकट करने वाला जङ्घाद्वय है । प्रत्यञ्चा के आघात की सूचक बहुत सारे युद्धों को करने से जिसका आधाभाग श्याम हो गया है, ऐसी वह यह कलाई है । ललाट पर यह यह रेखा विजयार्द्ध की एकमात्र साम्राज्य लक्ष्मी को कह रही है । समस्त शत्रुओं के समूह के प्रभाव को नष्ट करने वाला तेज भी यही है ॥54॥

(आँखो में आँसू भरकर) तो कैसे इन्हें आश्वस्त करूंगा । (सोचकर) इस प्रकार शोचनीय अवस्था को प्राप्त इसके आश्वस्त करने का अन्य उपाय नहीं है । इस प्रकार हुए अंजना के पति को आश्वस्त करने के योग्य एकमात्र वही है ॥55॥

तो इस समय और क्या विलम्ब किया जाय । अस्तु । ऐसा हो (इस प्रकार प्रतिसूर्य चला जाता है)

(अनन्तर अंजना और वसन्तमाला प्रवेश करती है) अंजना –सखि वसन्तमाला, अपने मन्दभाग्य को जानते हुए आज भी आर्यपुत्र के दर्शन की सम्भावना के प्रति मेरा हृदय विश्वास नहीं करता है ।

वसन्तमाला – विश्वास न करने वाली, क्या महाराज प्रतिसूर्य अन्यथा कहते हैं। अतः युवराज्ञी जल्दी कीजिए ।

(दोनो घूमती हैं ।)

वसन्तमाला – (सामने निर्देशकर) युवराज्ञी यह चन्दन का लतागृह है, इसमें दोनों प्रवेश करें ।

(दोनों प्रवेश करती हैं ।)

अंजना – (देखकर, विषाद सहित सहसा समीप में जाकर गले लगाती है)

वसन्तमाला – (आँखों में आँसू भरकर) हूँ, यह क्या है (दोनों चरणों में गिरती है)

पवनंजय – (अपनी इच्छा से आलिंगन करते हुए स्पर्श का अभिनय कर उच्छ्वास सहित) यह फूलों के समान बाहुयुगल वही है, मेरी प्रेयसी का पुष्ट स्तनतटयुगल वही है । क्या मेरे संकल्प फलीभूत हो गये हैं ? क्या यह मनोभ्रान्ति है? क्या यह स्वप्न है ? अस्तु, मैं नेत्र नहीं खोलूँगा । ॥56॥

अंजना – (आँखों में आँसू भरकर) अभव्या मेरे द्वारा आर्यपुत्र इस दशा को ले जाए गए ।

पवनंजय – (उत्कण्ठा के साथ) प्रिया के दर्शन के कौतूहल से युक्त मेरा यह मन शीघ्रता करा रहा है । अस्तु ! धीरे-धीरे आँखें खोलकर देखता हूँ (उसी प्रकार देखकर, हर्ष और विस्मय के साथ) क्या भाग्य से स्वयं प्रिया मिल गई । (अपने प्रति)

तुम्हारे संकल्पों से आगे वर्तमान जिसे आज दोनों भुजाओं से गाढ़ आलिङ्गित किया यह स्वयं तुम्हारे निजी भाग्य से वृद्धि को प्राप्त हो रही है । साक्षात् यह प्राणनाथ हो गई है। ॥57॥

(उठकर आलिङ्गन करता है)

अंजना – (आँखों में आँसु भरकर) आर्यपुत्र की जय हो ।

वसन्तमाला – स्वामी की जय हो ।

पवनंजय – (मुस्कराकर) वसन्तमाला तुम दोनों यहाँ कैसे आ गयीं ?

वसन्तमाला – स्वामी, इतने काल तक महाराज प्रतिसूर्य इस वन में युवराज्ञी के प्रसव करने पर तुम्हारे महाभाग्यशाली पुत्र के साथ हमें लेकर अपने हनूरुह द्वीप जाकर, वहाँ पर ठहराकर स्थित हैं ।

पवनंजय – (हर्ष पूर्वक) इस समय अंजना पुत्र कहाँ है ?

वसन्तमाला – स्वामी, विजयार्द्ध जाकर महोत्सव पूर्वक पुत्र का प्रथम दर्शन करना चाहिए, इस कारण महाराज प्रतिसूर्य पुत्र को नहीं लाए । इस समय महाराज प्रतिसूर्य ने तुम्हारा वृत्तान्त कहकर युवराज्ञी को लेकर यहाँ आकर चन्दनलता के गृह में हम लोगों को प्रविष्ट करा दिया ।

पवनंजय – (हर्ष पूर्वक) माननीय वे प्रतिसूर्य कहाँ हैं ?

वसन्तमाला – हमारे यहाँ पर पूर्वोपकारी गन्धर्वराज मणिचूड को तुम्हारे दर्शनार्थ बुलाने के लिए उनके आवास इसी रत्नकूट पर्वत पर आरूढ़ हो गए हैं ।
(सामने निर्देश कर) ये उसके साथ ही आ रहे हैं ।

पवनंजय – जिस महात्मा ने नमिवंश की प्रत्यवस्थापना की । हे दुर्बल शरीर वाली, उन तुम्हारे मामा को देखते हैं ॥58॥
(सभी चले जाते हैं)

श्री हस्तिमल्ल विरचितऽञ्जना- पवनंजय नामक नाटक में षष्ठ अङ्क समाप्त हुआ ।

अथ सप्तमोऽङ्कः

(तत: प्रविशत्यलङ्कृतो विदूषक:)

विदूषक – (अपने आपको देखकर) इन भूषण और रत्नों के प्रकाश के कारण चमकीले अङ्गों को किसे दिखलाकर प्रशंसा करूं (सामने देखकर) यह वसन्तमाला इधर आ रही है । इसे दिखलाता हूँ ।
(प्रवेश करके)

वसन्तमाला – ओह, यह बेमेल भूषणों की प्रभा से भयङ्कर अङ्गवाला आर्य प्रहसित आ रहा है ।

विदूषक – (समीप में जाकर) माननीय वसन्तमाला, मेरे रूप सौभाग्य को देखो ।

वसन्तमाला – (मुस्कराकर) आर्य, किसने इसका इस प्रकार प्रसाधन किया ।

विदूषक – माननीय यह अरिंदम, प्रसन्न कीर्ति प्रमुख अञ्जना के भाईयों ने मित्र के यौवराज्याभिषेक कल्याण में (उत्सव में), जमाई का प्रिय मित्र है, ऐसा मानकर इस प्रकार प्रसाधन किया है ।

वसन्तमाला – ठीक है ।

विदूषक – इस समय तुम कहाँ जा रही हो ?

वसन्तमाला – आर्य, इस समय महाराज प्रतिसूर्य अनूरुह द्वीप से वत्स हनुमान को लेकर आयेंगे । अतः मिश्रकेशी प्रमुख सखीजनों के साथ वत्स हनुमान् की अगवानी करने के लिए जा रही हूँ ।

विदूषक – मिश्रकेशी प्रमुख सब सखीजनो का अन्तः पुर की प्रधाना युक्तिमती के साथ विदा हुए कितना ही समय बीत गया । तो आओ, मित्र के समीप जाकर उन्हीं के साथ वत्स हनुमान को दोनों देखें ।

वसन्तमाला – यदि ऐसी बात है, तो आओं दोनों वहीं चलें ।

(घूमकर दोनों निकल जाते हैं)

प्रवेशक ।

(अनन्तर जिनका अभिषेक किया है, ऐसे पवनंजय अंजना विदूषक और वसन्तमाला प्रवेश करते हैं)

विदूषक – इधर से इधर से (सभी घूमते हैं।) यह सभामण्डप है । प्रियमित्र प्रवेश करें। (सभी प्रवेश करते हैं) (सामने निर्देश करके) यह मोतियों से जड़े चँदोवे के नीचे सिंहासन सज्जित है । इसे अलंकृत करें ।

पवनंजय – प्रिये, बैठिए ।

(सभी यथायोग्य बैठते हैं ।)

अञ्जना – सखि वसन्तमाला, भाग्य के लिए कुछ भी दुष्कर नहीं है, जो कि हम दोनों भी समस्त लोक के द्वारा सम्मानित आर्यपुत्र के समीप पुनः आ गए हैं ।

वसन्तमाला – युवराज्ञी, यह मेरे लिए दूसरा जन्म सा प्रतीत हो रहा है ।

पवनंजय – एक भाग्य है, दया करने वाला प्रतिसूर्य एक है, सचमुच सखी का सहचर मणिचूड एक है । मेरे भाग्य से ये पूर्ण वृद्धि को प्राप्त हैं । ये तुम्हारे दर्शन में निश्चित रूप से मात्र कारण हैं ॥1॥

वत्स हनुमान् को लाने के लिए गए हुए महाराज प्रतिसूर्य देर कर रहे हैं।

वसन्तमाला – हर्ष से विकसित मुख वाला यह व्यक्ति चारों ओर परिभ्रमण कर रहा है, इससे मैं अनुमान लगाती हूँ कि वत्स हनुमान् को लेकर महाराज प्रतिसूर्य आ गए हैं ।

पवनंजय – (देखकर) वसन्तमाला, ठीक देखा । यहाँ निश्चित रूप से वेग के कारण शिथिल हुए केश पाश को बायें हाथ में रखकर दूसरी हथेली से जिसकी मेखला ढीली पड़ गई है, ऐसी नीवी को धारण कर, कंधे पर से उड़ते हुए स्तनांशुक की झालर कपोल से धारण कर प्रीतिपूर्वक चारों ओर से अन्तः पुर की स्त्रियाँ सहसा दौड़ रही हैं ॥2॥

सामने चञ्चल लाठी को इधर उधर पुनः पृथ्वीतल पर रखता हुआ, आकुल व्याकुल होकर घबराहट पूर्वक सिर उष्णीय (साफा) पट्ट को धारण करता हुआ, लम्बे लम्बे उड़ते हुए कञ्चुक को इस समय उठाकर हर्षित हुआ यह पुराना कञ्चुकी कठिनाई से इधर से दौड़ रहा है ॥3॥

वसन्तमाला - ओह, समस्त राजसमूह हर्ष से भरा हुआ दिखाई दे रहा है ।

पवनंजय - (अंजना को देखकर) हे दुर्बल शरीर वाली, निमेष की रुकावट की परवाह न करते हुए दोनों नेत्रों को हर्ष के आंसुओं से भरकर कृतार्थ करते हुए, पुनः शिर सूंघकर प्रसन्नता पूर्वक घने रोमांच वाली दोनों भुजाओं से तुम्हारे पुत्र हनुमान् को आलिंगन करता हुआ पद को शासन वाणी तक स्थायी बनाऊं ॥4॥

विदूषक - (हर्ष पूर्वक, सामने निर्देशकर) मित्र, देखो । यह महाराज प्रतिसूर्य वत्स हनुमान् को लेकर छज्जे पर विद्यमान महेन्द्रराज प्रमुख महाराज के साथ निकलकर इधर आ रहे हैं ।

(सभी देखकर हर्ष पूर्वक उठते हैं)

पवनंजय - (देखकर)

यह प्रतिसूर्य प्रभातकालीन रम्य उदयाचल की लक्ष्मी को धारण कर रहे हैं। नमिवंश की पताका स्वरूप यह वत्स हनुमान् उदित होते हुए तरुण सूर्य के समान लग रहे हैं ॥5॥

(अनन्तर हनुमान् को लाकर प्रतिसूर्य प्रवेश करता है)

प्रतिसूर्य - वत्स हनुमान्, अपने पिता को देखो । जो ये प्रभाव में महान्, समस्त विश्व को आह्लादित करने वाले हैं । ये गुणों के समूह के साथ आपके भी जन्मदाता हैं ॥6॥

हनुमान् - (देखकर हर्षपूर्वक) यह पिता हैं ।

विदूषक - (समीप में जाकर) महाराज की जय हो ।

अञ्जना - (समीप में जाकर) माता, वन्दना करती हूँ ।

प्रतिसूर्य - वत्से, कल्याणिनी होओ ।

पवनंजय - महाराज, यह प्रह्लाद पुत्र प्रणाम करता है ।

प्रतिसूर्य - युवराज, चिरकाल तक जिओ । वत्स हनूमन्, अपने पिता की अभिवन्दना करो ।

हनुमान् - पिता जी, वन्दना करता हूँ ।

पवनंजय् - (स्नेह पूर्वक) वत्स, आयुष्मान् होओ । (गले लगाता है ।)

वसन्तमाला - महाराज, इस भद्रासन को अलंकृत करें ।

प्रतिसूर्य - युवराज, अलंकृत कीजिए ।

(सभी यथायोग्य बैठते हैं ।)

पवनंजय - हनुमन्, अपने पिता के मित्र को प्रणाम करो ।

हनुमान् - (उठकर समीप में जाकर) - तात, वन्दना करता हूँ ।

विदूषक - (स्नेह पूर्वक आलिंगन कर, और गोद में लेकर) वत्स, दीर्घायु होओ । वत्स, उन्हें प्रणाम करो ।

हनुमान् - (उठकर और समीप में जाकर) माता जी, वन्दना करता हूँ ।

अञ्जना - पुत्र, दीर्घायु होओ ।

वसन्तमाला - पुत्र, बैठो (अपनी गोद में बैठाकर) ओह, यह बात निश्चित सत्य है कि जीते हुए कल्याण की प्राप्ति होती है क्योंकि कि हम लोग सैकड़ों आपत्तियों के पात्र हुए ।

विदूषक - माननीय वसन्तमाला, तुम दोनों मातङ्गमालिनी का वृत्तान्त हो ।

वसन्तमाला - आर्य, उस अत्यन्त दारुण वृत्तान्त को कैसे कहूं, जिससे स्मरण करते हुए इस समय भी मेरा हृदय काँप रहा है । आज उस बीते हुए को क्यों याद दिला रहे हो ?

प्रतिसूर्य - तो सुनो ।

विदूषक - सावधान हूँ ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर (सरोवण के) सरोवर के किनारे रोकी हुई भी पुन: आँखों में आँसू भरे हुए यह अञ्जना महेन्द्रपुर को जाने के लिए वसन्तमाला से प्रोत्साहित हुई, जीवन से निरपेक्ष होने के कारण और स्त्री प्रकृति की व्यामुग्धता के कारण और उस प्रकार की भवितव्यता के कारण उसके वचनों को भी न मानती हुई, विपरीत भाग्य के द्वारा ही मानों प्रेरित की जाती हुई उसी क्रूर वन्य पशुओं से दूषित, जिस पर संचार करना कठिन था, जो ऊबड़ खाबड़ थी तथा जो पत्थरों के टुकड़ों और कंकड़ों से व्याप्त थी, जड़ से लेकर कटीली लताओं, दलदल से घिरी हुई, मनुष्यों के द्वारा न देखी जाती हुई मातङ्गमालिनी में प्रविष्ट हो गई ।

विदूषक - फिर क्या हुआ ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर उसी मातङ्गमालिनी में मार्ग दिखाई न देने के कारण दोनों बिना लक्ष्य के चारों ओर परिभ्रमण करती हुई अपनी इच्छा से गन्धर्व राज मणिचूड के आवास रत्नकूट पर्वत की तलहटी की समीपवर्ती भूमि में, जो मानों वसन्त समय का उत्पत्तिस्थान थी, वायु का विहार प्रदेश थी, नन्दनवन की मानों प्रणयिनी थी, वनमाला आईं ।

पवनंजय - फिर क्या हुआ ?

प्रतिसूर्य - अनन्तर दोनों ने कुछ विकसित हृदय से वहाँ निवास के योग्य प्रदेश को खोजते हुए बहुत देर बाद उसी पर्वत के पूर्व दिशा के एक भाग में आश्रित एकान्त रमणीय, गुफा का द्वार प्राप्त किया ।

पवनंजय - अनन्तर ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर वहाँ एकत्रित दोनों ने आत्मा में, आत्मा को, आत्मा के द्वारा ध्याते हुए, पाप रहित, समस्त इन्द्रियों के उपद्रवों पर जिन्होंने नियन्त्रण कर लिया है, जो पर्यङ्कासन में स्थित हैं, त्रैलोक्यदर्शी हैं, तप की साक्षात् मूर्ति हैं ऐसे निर्ग्रन्थ मुनिश्रेष्ठ भगवान् अमितगति के सौभाग्य से दर्शन किए ।।7।।

पवनंजय - तीन ज्ञान (मति, श्रुत और अवधिज्ञान) रूपी नेत्र वाले भगवान् को नमस्कार हो ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर ये दोनों उनके दर्शन के सुख से सहसा गहन वन में परिभ्रमण करने से उत्पन्न थकान को भूल गई । सब प्रकार से सन्तुष्ट मन से भगवान् अमितगति की विधिपूर्वक प्रदक्षिणा देकर भक्तिपूर्वक प्रणाम कर थोड़ी दूर बैठीं ।

अञ्जना और वसन्तमाला - उन दु:खी व्यक्तियों के शरणभूत को नमस्कार हो ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर उन भगवान् अमितगति ने उसी समय योग समाप्त कर करुणा से आर्द्र नेत्रों से मुहूर्त भर के लिए देखकर शान्त और गम्भीर वाणी में कहा

कि वत्सा अञ्जना, शोक मत करो । निश्चित रूप से यह तुम्हारे पूर्वजन्म में उपार्जित कर्म है, जो कि तुम पति का विरह अनुभव कर रही हो । यह कर्म प्रायः समाप्ति पर है । शीघ्र ही महाभाग्य शाली पुत्र को प्रसव करोगी। अतः कुछ समय बीत जाने पर तुम अपने पति पवनंजय को निश्चित रूप से देखोगी । इस प्रकार श्रुतिसुख (सुनने में सुखकर) मुनि के वचन को प्रत्यक्ष के समान सुनकर उस सब वृत्तान्त को अनुभव सा करते हुए दोनों प्रणामाञ्जलि कर भगवान् की वन्दना की ।

पवनंजय - निश्चित रूप से महर्षि लोग दिव्यचक्षु वाले होते हैं ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर कुछ समय सुख पूर्वक यथायोग्य बातचीत कर वे सुन्दर वचन वाले ठहरकर "भद्रे ! तुम दोनों को प्रसूति समय तक इसी गुफा में ठहरना चाहिए, ऐसा कहकर स्वयं अन्तर्धान हो गए ।

पवनंजय - अनन्तर

प्रतिसूर्य - तदनन्तर उसी भगवान मुनि अमितगति के पर्यङ्कासन से जिसका यथार्थ नाम पर्यङ्कगुहा रख दिया था, उसमें वे दोनों बहुत समय तक रहीं ।

पवनंजय - फिर क्या हुआ ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर सूर्य के पश्चिम दिशा में उतरने पर अपने आवास की ओर उन्मुख वन प्राणियों के चारों ओर संचरण करने पर दाढ़ रूपी चन्द्रकला से भयङ्कर मुख वाला, वन को क्षुब्ध करता हुआ, खेल ही खेल में विदीर्ण किए गए गन्धहस्ती के शिर से चूती हुई रक्त की धारा के लेप से जिसके बहुत सारे गर्दन के बालों का समूह अभ्यर्चित हो रहा था, चमकते हुए मेघ की गर्जना के समान भय उत्पन्न करने वाला क्रोधी सिंह भूमि पर आ पड़ा ।8।।

अञ्जना - (घबड़ाहट के साथ आँख बन्द कर) क्या बात है, इस समय भी वह भीषण सिंह प्रत्यक्ष के समान दिखाई दे रहा है ।

वसन्तमाला - युवराज्ञी, इस समय भी मेरे सिंह का स्मरण करते हुए मेरा हृदय काँप रहा है ।

पवनंजय - वसन्तमाला सहित सजीवित अञ्जना को यहाँ सामने ही देखते हुए मेरा दुःखी मन इस विश्वास को प्राप्त नहीं होता है कि वन में सिंह को कौन रोक देगा ? ।।9।।

विदूषक - (विषाद सहित) - माननीय के समीप में सिंह आ गया, ऐसा सुनते ही मेरा हृदय अत्यधिक रूप से क्षुब्ध हो गया, प्रत्यक्ष रूप से देखने वाली बेचारी वसन्तमाला का तो कहना ही क्या ?

प्रतिसूर्य - अनन्तर यह वनमाला घबराहट पूर्वक हे वनवासिनी देवियों इस सिंह से रक्षा करो, रक्षा करो, इस प्रकार जोर से विलाप करती हुई, बलवान् यहाँ से कठिनाई से मनुष्य के द्वारा अगोचर रक्षक को न देखती हुई भगवान् मुनि अमित गति के वचनों की अन्यथा शङ्का करती हुई उसी तीन हाथ की दूरी वाले सिंह के सामने गिर गई ।

पवनंजय - कष्ट है, अत्यन्त कठिनाई से सुनी जाने वाली बात हो गई ।

विदूषक - सखी के प्रति उसका वैसा ही स्नेह था ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर उस पर्वत पर निवास करने वाली गन्धर्वराज मणिचूड़ की देवी रत्नचूड़ा ने स्त्रियों के करुणविलाप को सुनने से यह क्या है, इस प्रकार इधर उधर दृष्टि डालते हुए भली भाँति देखकर घबराहट के साथ आर्य, शीघ्र ही तुम्हारे निवास की समीपपवर्तिनी इन दोनों अशरण स्त्रियों को यमराज के सदृश इस सिंह से बचाओं, ऐसा निवेदन किया ।

अनन्तर वहां पर वह गन्धर्वराज मणिचुड़ विक्रिया से शरभ रूप बनाकर बचाने की इच्छा से सिंह पर झपटा । तत्क्षण उसे लेकर आकाश मार्ग से कहीं दूर चला गया ॥10॥

पवनंजय - यह बड़े लोगों की रीति है ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर शरभ के कार्य को देखने से जिनका भय और कष्ट अधिक हो गया है ऐसी इन दोनों को आश्वस्त करने के लिए उसी समय रत्न चूड़ा आई, 'सखियो, मत डरो' इस प्रकार धैर्य बंधाती हुई, यथायोग्य रूप से अपना वृत्तान्त कहकर, तुम दोनों कौन हो, कहाँ से आई हो अपना यहाँ आने का क्या कारण है, यह पूछा ।

अंजना - निर्जन वन में इस प्रकार के आश्वासन को पाकर ऐसी भाग्य वाली मैं पुनः आर्यपुत्र का दर्शन करुँगी, इस प्रकार हृदय में गहरी सांस ली ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर यथायोग्य रूप से वसन्तमाला के द्वारा अञ्जना का वृत्तान्त निवेदन किए जाने पर रत्नचूड़ा सखी के प्रति स्नेह युक्त हो गई । अनन्तर स्वयं आकर गन्धर्वराज मणिचूड ने रत्नचूडा के द्वारा अञ्जना का वृत्तान्त निवेदन करने पर सौहार्द उत्पन्न हुए मन से पुत्री, शोक मत करो । मैं तुम्हारे लिए महाराज महेन्द्र के सदृश हूँ, अतः अपनी निजी भूमि में प्रविष्ट हुई हो, इच्छानुसार यहीं ठहरो, ऐसा कहा ।

पवनंजय - फिर क्या हुआ ?

प्रतिसूर्य - इस रत्नचूड़ा के द्वारा प्रतिदिन विश्वास बढ़ते रहने पर सुख पूर्वक समय व्यतीत होने पर कदाचित् ।

इस अञ्जना ने पूर्व दिशा जिस प्रकार उत्कृष्ट तेज के निधि प्रातः कालीन सूर्य को जन्म देती है, उसी प्रकार वत्स हनुमान् को जन्म दिया ॥11॥

पवनंजय - अनन्तर ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर अपनी इच्छा से विमान पर चढ़कर यहीं जाते हुए मैंने पुत्री अञ्जना के गहन वन में प्रसव के विषय में शोक करती हुई वसन्तमाला के विलाप की ध्वनि सुनी

पवनजय - अनन्तर

प्रतिसूर्य - अनन्तर उस मनुष्यों के द्वारा अगोचर वन में स्त्रीजन के रोने को सुनकर, यह क्या है, इस प्रकार उत्कण्ठा से उसी पर्यङ्कगुहा में उतरा ।

पवनंजय - अनन्तर ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर मेरे दर्शन से ये दोनों आश्वस्त हो जाने पर भी स्त्रीजन सुलभ भय से पुनः रोने लगीं ।

पवनंजय - बन्धुजनों का सान्निध्य अनुभूत शोक को दुगुना कर देता है ।

प्रतिसूर्य - वसन्तमाला के द्वारा अञ्जना का वृत्तान्त निवेदन किए जाने पर मैं अनूरुह द्वीप में ही वत्सा अञ्जना को ले जाने के लिए मन में निश्चय कर वहीं रत्नचूडा के साथ वत्सा की कुशल पूछने के लिए आए हुए गन्धर्वराज मणिचूड से योग्य बातचीत कर क्षण भर ठहरा ।

पवनंजय - फिर क्या हुआ ?

प्रतिसूर्य - जिन्होंने स्नेह सम्बन्ध का प्रदर्शन किया है, ऐसे उन दोनों से अनुमोदित गमन वाली वत्सा जिस किसी प्रकार भेजी गई ।

पवनंजय - फिर ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर प्रथम ही विमान पर चढ़कर रत्नकूट कटक पर स्थित वसन्तमाला के हाथ से लाने की इच्छा करने वाले मेरे हाथ में पहुँचे बिना ही विमान में धारित रत्नकिरणों के स्फुरण से तिरोहित सूर्य के बिम्ब को लेने के लिए ही मानों उछलते हुए वत्स यकायक शिलातल पर गिर पड़ा ।

पवनंजय - (विषाद पूर्वक, दोनों कान बन्द कर) पाप शान्त हो ।

विदूषक - (शोक सहित कान बन्द कर) अहह ।

अंजना - (आँखों में आँसु भरकर) ओह, मेरे जीवन की निष्ठुरता, जो कि उस समय प्रत्यक्ष ही वत्स हनुमान् को शिलाओं के ढेर पर गिरते हुए देखकर निष्ठुर ही रहा ।

वसन्तमाला - (हनुमान के अङ्गों का स्पर्श करती हुई) वत्स, दीर्घायु होओ ।

विदूषक - महाराज, इस संकट के आगे की बात शीघ्र कहिए ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर शोक के आवेग से स्तब्ध इन दोनों के स्थित रहने पर मैं भी अन्तरङ्ग में शुष्क हृदय वाला होकर घबड़ाहट पूर्वक इन दोनों से 'मत डरो' इस प्रकार धैर्य बंधाता हुआ ।

उस क्षण मानों वज्रपात से कणों के रूप में फैली हुई उस शिला के मध्य में शयन करते हुए अबालकृत्य तुम्हारे महान् प्रभाव वाले बालक पुत्र को देखा ॥12॥

पवनंजय - (हनूमान् को लाकर और गले लगाकर) वत्स, चिरकाल तक जिओ ।

प्रतिसूर्य - अनन्तर विस्मय और हर्ष के साथ उस हनूमान् को 'यह चरम देह है, इस प्रकार सम्मान पूर्वक लाकर हम लोग विमान पर आरोहण कर अनूरुह द्वीप को ही गए ।

पवनंजय - अनन्तर

प्रतिसूर्य - अनन्तर हम लोगों के द्वारा यथा योग्य जात कर्म आदि संस्कार किए जाने पर, समय बीत जाने पर महाराज प्रहलाद ने महेन्द्रराज से आपके वृत्तान्त के निवेदन पूर्वक आपको खोजने के लिए बुलाया ।

मतङ्गमालिनी में प्रवेश कर चारों ओर ढूंढते हुए रत्नकूट पर्वत की वनमाला की मध्यवर्तिनी मकरन्द वापिका के किनारे चन्दनलता गृह में वर्तमान कल्याण के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ आपको प्राप्त कर वत्सा अञ्जना के साथ यहीं मैं पुनः आ गया ।

विदूषक - महाराज, अधिक कहने से क्या, आपसे हम सब प्रत्युज्जीवित हो गए ।

प्रतिसूर्य - आर्य प्रहसित, ऐसा मत कहो । यह सब गन्धर्वराज मणिचूड की कृपा का द्योतक है ।

(अनन्तर आकाश से उतरा हुआ मणिचूड प्रविष्ट होता है ।)

(सभी उठते हैं ।)

मणिचूड - यह हमारा प्रिय मित्र कुमार पवनंजय है, निर्मल जो अञ्जना से युक्त होता हुआ भी आज मेरे लिए खड़ा हो रहा है ॥13॥

तो इसके समीप जाता हूँ (समीप में जाता है ।)

(सभी प्रणाम करते हैं ।)

प्रतिसूर्य - महाराजा प्रतिसूर्य ।

प्रतिसूर्य - आज्ञा दो ।

मणिचूड - मित्रता को प्राप्त वरुण ने, पूर्व उपकार से प्रेरित लङ्केश्वर रावण ने, विजयार्द्ध अधिराज्य की लक्ष्मी इसी पवनंजय को यौवराज्याभिषेक महोत्सव पर प्रदान करने के लिए इस समय मुझसे कहा है और इस प्रकार महाराज प्रह्लाद, महेन्द्र और अन्य दोनों श्रेणियों के प्रधान विद्याधरों के द्वारा आज्ञा प्राप्त कर स्वयं यहाँ आया हूँ । तो आप लोग भी अनुमति प्रदान करें ।

प्रतिसूर्य - (हर्षपूर्वक) हम लोगों ने अनुमति दे ही दी है ।

उत्पन्न सौहार्द वाले आपके विद्यमान रहते हुए संसार में कौन सी वस्तु कठिनाई से प्राप्त होने योग्य हो सकती है ।

विदूषक - (हर्षपूर्वक) मित्र, कल्याण परम्परा से बधाई हो ।

मणिचूड - हे विद्याधर राजवंश के तिलक, प्रहलाद् राजा के पुत्र, तुम्हें मैंने विद्याधर गिरि की साम्राज्यलक्ष्मी दी ।

पवनंजय - मैं अनुगृहीत हूँ ।

मणिचूड - (सामने निर्देश कर)

विनय पूर्वक नम्र मुकुटों के शिखर पर प्रणामाञ्जलि रखकर तुम्हारी ये विद्याधर लोग चारों ओर से उत्सुक होकर सेवा कर रहे हैं ॥14॥

प्रतिसूर्य - ये आपके अनुग्रह के योग्य ही हैं ।

मणिचूड - तुम्हारे प्रति आसक्त यह सौहार्द मुझे वाचाल बना रहा है । और तुम्हें कौन सी वस्तु उपहार में दूँ, हे सौम्य, मुझसे आज कहो ।

पवनंजय - पुत्र सहित, प्रिया प्राप्त की, विद्याधर लक्ष्मी भी प्राप्त की । हे सुमुख, कौन सी लक्ष्मी दुष्प्राप है, तथापि यह हो ॥15॥

जिसके समस्त उपद्रव शान्त हो गए हैं, ऐसी प्राणियों को धारण करने वाली पृथ्वी का राजा पालन करें । समय समय पर बादल संसार की अभिलषित वर्षा को बर्षायें ।

सज्जनों के साथ कवियों की योग्य बहुमति को पाकर काव्यरचनायें स्थिर रहें । जैनमार्ग में मन लगाए हुए भव्यजनों को निरन्तर कल्याण हो ॥16॥

(सभी लोग चले जाते हैं)

श्री गोविन्द भट्टारक स्वामी के पुत्र श्रीकुमार, सत्यवाक्य, देववल्लभ, उदय भूषण नामक महानुभावों के अनुज कवि वर्द्धमान के अग्रज कवि हस्तिमल्ल विरचित अञ्जना पवंजय नामक नाटक में सातवां अङ्क समाप्त हुआ ।

यह अंजना पवनंजय नामक नाटक समाप्त हुआ ।

अंजना पवनंजय नाटक का सूक्ति वैभव

प्रथम अङ्क

1. यत्सत्यं नाटकान्ताः कवयः
2. समीचीना वाचः सरल सरला कापि रचना ।
   परा वाचोयुक्तिः कविपरिषदाराधनपरा ॥
   अनालीढो गाढ़ः परमनति गूढोऽपि च रसः ।
   कवीनां सामग्री झटिति चलितं कं न कुरुते ॥
3. किं राजहंसवधीयं बकोटकमनुसरति वरटा ।
4. चन्द्र एव खुल चन्द्रिकायाः संभाव्यते ।
5. दुखगाहा हि भागधेयानां परिपाकाः ।
6. यथास्थिता कथा तथैव खुल कथयितव्यम् ।
7. स्थाने खलु स्त्रियं हि नाम लज्जा भूषयति ।
8. किं नाम दुखगाहं हृदयनिर्विशेषस्य सखीजनस्य ।
9. साधु खलु अनुमीयते हृदयम्

द्वितीय अङ्क

10. न खलु कदाचिद्राजसिंहः करिकलभैरभियुक्तो भवेत् ।
11. न ववधूसमागमोत्सवो नाम कामिजनमनः समावर्जनैक रसो मदनस्य रसान्तराभिनिवेशः।
12. स्वभावतो हि नवसमागमः स्वयमेव कामिनी नामनावेद्यानुद्भावयति भावान् ।
13. न चाल्पीयानपि कालः प्रियाविरहेणातिहयितुं पार्यते ।
14. इह खलु कामिनां हृदयेषु क्रमादुत्कण्ठा सहस्र बद्धामजस्त्रं सोपान परिपाटीमधिरोहति मदनः ।
15. भवति ललनां चेतः श्रुत्वा विलोकनसत्वरं, तदनुभजते दृष्ट्वा चिन्तां समागम शंसिनीम्
16. वसन्ति राज्ञाममात्य निष्ठां वृत्तिम् ।
17. निर्भिन्न द्विरदेन्द्रमस्तकतटीनिर्मुक्तमुक्ताफल श्रेणीदन्तुरदन्तकुन्त विवरो यो राजकण्ठीरवः सोऽयं मानमहान् स्वयं मृगशिशुव्यापादनव्यापृतः । किं कीर्तिर्न्तरमाम्मतो जनयति प्रख्यातशौर्योचितम् ।
18. पुत्रेष्वनिर्वापितविक्रमेषु विद्याविनीतेषु भवादृशेषु ।
    यथा वदारोपित कार्यभाराः स्वैरं नरेन्द्राः सुखिनो भवन्ति ।

तृतीय अङ्क

19. सर्वथोद्वेजनीयं खलु राजपुत्रमित्रत्वं नाम ।

चतुर्थ अङ्क

20. तथापि किं चन्द्रलेखाऽपि गरलमुद्गिरति, चन्दनलता वाऽऽग्निम् ।
21. निरवद्यं चारित्रं ज्ञात्वाऽपि निजाभिजात्यपक्षस्यः ।
    बिभ्यति खुल कुलवनिताः परिवादलवादपि प्रायः ॥

22. परिणतेरपि जाता कुत्राचिद्गर्हणीया ।
23. कष्टमुद्वेजनीया खलु परपिण्डगृध्नुता ।
24. अनुल्लंघनीयाः खलु स्वामिनी सन्देशाः ।
25. इदं तावच्चिन्त्यं सपदि सुकृताद प्यसुकृतं ।
    परं प्रेमः प्रायो भवति निखिलस्यापि जगतः ॥

पञ्चम अङ्क

26. वैराय कल्पते युद्धमिति नैकान्तिकं वचः ॥
27. सणेहो कु पात्रं संकइ ।
28. आभिजात्यपरिपालने रताः सर्वतोऽपि परिवादभीरवः ।
    संगृहीतपतिदेवताव्रताः श्लाघनीयचरिताः कुलाङ्गनाः ॥
29. अननुभूतवियोगकथामपि प्रियतमां प्रणयादुपलालयन् ।
    भवति यः परिपूर्ण मनोरथो युवजनः सुकृती स हि कामिनाम् ॥
30. स्वच्छन्द चारिणः खलु प्रभवो भवन्ति ।

षष्ठ अङ्क

31. उद्दामपञ्चबाणे पयोदकाले सुदुस्सहे के वा ।
    धीरा विरहास जाया समागमं केवलं च जीवन्ति ॥
32. सर्वथा निष्ठुराः खुल पुरुषाः ।
33. अनुभाव्य एवं यादृ जन्मान्तर एवं कर्मपरिपाकः ।
34. चिरतरं विधिना प्रतिबन्धिना, विघटितानि मिथो मिथुनान्यपि ।
    घटयितुं प्रभवत्यचिरादिव स्वयमसौ भगवान् रतिवल्लभः ॥

सप्तम अङ्क

35. न खलु दुष्करं नाम दैवस्य ।
36. सत्यं खलु तत्, जीवन् भद्रं प्राप्नोति ।
37. दिव्यचक्षुषो हि महर्षयः ।
38. अनुभूतं हि शोकं द्विगुणयति बन्धुजनसांनिध्यम् ।

॥ इति शुभम् ॥